

Chapter बारह

ध्रुव महाराज का भगवान् के पास जाना

मैत्रेय उवाच

ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुद्ध्य वैशसा-

दपेतमन्युं भगवान्धनेश्वरः ।

तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः

संस्तूयमानो न्यवदत्कृताञ्जलिम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; ध्रुवम्—ध्रुव महाराज को; निवृत्तम्—विमुख; प्रतिबुद्ध्य—जानकर; वैशसात्—वध से; अपेत—शान्त; मन्युम्—क्रोध; भगवान्—कुबेर; धन-ईश्वरः—धन के स्वामी; तत्र—वहाँ; आगतः—प्रकट हुए; चारण—चारण; यक्ष—यक्षों; किन्नरैः—तथा किन्नरों द्वारा; संस्तूयमानः—पूजित होकर; न्यवदत्—बोला; कृत-अञ्जलिम्—हाथ जोड़े हुए ध्रुव से।

महर्षि मैत्रेय ने कहा : हे विदुर, ध्रुव महाराज का क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने यक्षों का वध करना पूरी तरह बन्द कर दिया। जब सर्वाधिक समृद्ध धनपति कुबेर को यह समाचार मिला तो वे ध्रुव के समक्ष प्रकट हुए। वे यक्षों, किन्नरों तथा चारणों द्वारा पूजित होकर अपने सामने हाथ जोड़कर खड़े हुए ध्रुव महाराज से बोले।

धनद उवाच

भो भोः क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ ।

यत्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

धन-दः उवाच—धनपति (कुबेर) ने कहा; भोः भोः—अरे; क्षत्रिय-दायाद—हे क्षत्रिय पुत्र; परितुष्टः—अत्यन्त प्रसन्न; अस्मि—हूँ; ते—तुमसे; अनघ—हे पापहीन; यत्—क्योंकि; त्वम्—तुम; पितामह—अपने पितामह के; आदेशात्—आदेश से; वैरम्—शत्रुता, वैर; दुस्त्यजम्—न छोड़ी जा सकने योग्य; अत्यजः—त्याग किया है।

धनपति कुबेर ने कहा : हे निष्पाप क्षत्रियपुत्र, मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि अपने पितामह के आदेश से तुमने वैरभाव को त्याग दिया यद्यपि इसे तज पाना बहुत कठिन होता है। मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ।

न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव ।

काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; भवान्—तुमने; अवधीत्—मारा है; यक्षान्—यक्षों को; न—नहीं; यक्षाः—यक्षों ने; भ्रातरम्—भाई को; तव—तुम्हारे; कालः—समय, काल; एव—निश्चय ही; हि—क्योंकि; भूतानाम्—जीवात्माओं के; प्रभुः—परमेश्वर; अप्यय-भावयोः—प्रलय तथा सृजन के।

वास्तव में न तो तुमने यक्षों को मारा है न उन्होंने तुम्हारे भाई को मारा है, क्योंकि सृजन तथा विनाश का अनन्तिम कारण परमेश्वर का नित्य स्वरूप काल ही है।

तात्पर्य : जब धनपति कुबेर ने ध्रुव महाराज को पापमुक्त कह कर सम्बोधित किया होगा तो ध्रुव महाराज ने अपने को इतने यक्षों के वध का उत्तरदायी समझ कर अपने विषय में कुछ और ही सोचा होगा; किन्तु कुबेर ने उन्हें विश्वास दिलाया कि उन्होंने सचमुच ही यक्षों का वध नहीं किया था, अतः वे पापी थे ही। उन्होंने अपने राजा के कर्तव्य को निबाहा था। कुबेर ने कहा, “तुम्हें यह भी नहीं सोचना चाहिए कि यक्षों द्वारा तुम्हारे भाई का वध हुआ। वह तो प्रकृति के नियमानुसार काल के फेर से मरा या मारा गया। प्रलय तथा सृष्टि के लिए अन्ततः नित्यकाल ही उत्तरदायी है, जो भगवान् के स्वरूपों में से एक है। तुम इन कृत्यों के भागी नहीं हो।”

अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि ।

स्वाप्नीवाभात्यतद्भ्यानाद्यया बन्धविपर्ययौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; त्वम्—तुम; इति—इस प्रकार; अपार्था—मिथ्या; धीः—बुद्धि; अज्ञानात्—अज्ञान से; पुरुषस्य—पुरुष के; हि—निश्चय ही; स्वाप्नि—स्वप्न; इव—सदृश; आभाति—प्रकट होती है; अ-तत्-ध्यानात्—देहात्मबुद्धि से; यया—जिससे; बन्ध-बन्धन; विपर्ययौ—तथा दुःख।

देहात्मबुद्धि के आधार पर स्व तथा अन्यो का 'मैं' तथा 'तुम' के रूप में मिथ्याबोध अविद्या की उपज है। यही देहात्मबुद्धि जन्म-मृत्यु के चक्र का कारण है और इसीसे इस जगत में हमें निरन्तर बने रहना पड़ता है।

तात्पर्य : अहं त्वम् अर्थात् मैं और तुम का भाव भगवान् से अपने शाश्वत सम्बन्ध को भूलने के कारण उत्पन्न होता है। परम पुरुष कृष्ण केन्द्र-बिन्दु हैं और हम सब उनके भिन्नांश हैं, ठीक वैसे ही जैसे हाथ तथा पाँव पूरे शरीर के अंश हैं। जब हमें यह ज्ञान हो जाता है कि हम परमेश्वर से शाश्वत रूप से जुड़े हैं, तो देहात्म-बुद्धिजन्य यह अन्तर नहीं रह सकता। इसी उदाहरण को यहाँ प्रयुक्त समझना चाहिए—हाथ-हाथ है और पैर-पैर, किन्तु जब वे दोनों सम्पूर्ण शरीर की सेवा में लगे जाते हैं, तो

हाथ-पाँव का अन्तर नहीं रह जाता, क्योंकि ये शरीर के अंग हैं तथा कार्य करनेवाले सभी अंगों के साथ मिलकर पूरे शरीर की रचना करते हैं। इसी प्रकार जब जीवात्माएं कृष्णभावनाभावित हो जाती हैं, तब “मैं” और “तुम” का अन्तर नहीं रह जाता क्योंकि तब प्रत्येक जीवात्मा भगवान् की सेवा में लगी होती है। चूँकि भगवान् परम पूर्ण हैं, अतः सेवाएँ भी परम हैं। चूँकि हाथ एक प्रकार से काम करते हैं और पाँव दूसरी तरह से, किन्तु उनका उद्देश्य परमेश्वर की सेवा करना है, अतः वे सब एक हैं। इसमें तथा मायावादी चिन्तक के इस कथन में कि सभी वस्तुएँ एक हैं, भ्रम नहीं होना चाहिए। वास्तविक ज्ञान तो यह है कि हाथ-हाथ है और पाँव-पाँव, शरीर-शरीर है, तो भी सब मिलकर एक हैं। ज्योंही जीवात्मा सोचता है कि वह स्वतंत्र है, वैसे ही बद्धजीवन प्रारम्भ होता है। अतः स्वतंत्र सत्ता का विचार स्वप्नवत् है। मनुष्य को कृष्णचेतना अथवा अपने मूल स्थिति में रहना चाहिए। तभी वह भव-बन्धन से छूट सकता है।

तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम् ।

सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतः; गच्छ—आओ; ध्रुव—ध्रुव; भद्रम्—कल्याण हो; ते—तुम्हारा; भगवन्तम्—भगवान् को; अधोक्षजम्—भौतिक इन्द्रियों की विचार शक्ति के परे; सर्व-भूत—समस्त जीवात्माएँ; आत्म-भावेन—उन्हें एक सोच करके; सर्व-भूत—समस्त जीवात्माओं में; आत्म—परमात्मा; विग्रहम्—मूर्ति, विग्रह रूप।

हे ध्रुव, आगे आओ। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें। भगवान् ही जो हमारी इन्द्रियों की विचार-शक्ति से परे हैं, समस्त जीवात्माओं के परमात्मा हैं। इसलिए सभी जीवात्माएँ बिना किसी अन्तर के एक हैं। अतः तुम भगवान् के दिव्य रूप की सेवा प्रारम्भ करो, क्योंकि वे ही समस्त जीवों के अनन्तिम आश्रय हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर *विग्रहम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह इंगित करता है कि परम सत्य ही अन्ततः भगवान् हैं। इसकी व्याख्या *ब्रह्म-संहिता* में मिलती है। *सच्चिदानन्द विग्रहः* उनका रूप है, किन्तु यह किसी भी भौतिक रूप से भिन्न प्रकार का है। जीवात्माएँ तो परम रूप की तटस्था शक्ति हैं। इस प्रकार वे परम रूप से भिन्न नहीं हैं, किन्तु इसके साथ ही वे उस परम रूप के तुल्य भी नहीं हैं। यहाँ पर ध्रुव महाराज से परम रूप की सेवा करने को कहा गया है। इसमें अन्य व्यष्टि रूपों की सेवा

सम्मिलत है। उदाहरणार्थ, वृक्ष का एक रूप है और जब वृक्ष की जड़ों में पानी डाला जाता है, तो अन्य रूप—पत्तियाँ, टहनियाँ, फूल तथा फल—भी स्वतः सिंच जाते हैं। यहाँ पर मायावादियों की यह धारणा कि परम सत्य सब कुछ है, इसलिए यह रूपहीन है, निरस्त हो जाती है। उल्टे यह पुष्ट होता है कि परम सत्य का रूप होता है (वह सगुण है) फिर भी वह सर्वव्यापी है। उससे स्वतंत्र कुछ भी नहीं है।

भजस्व भजनीयाद्भिमभवाय भवच्छिदम् ।

युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्यात्ममायया ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

भजस्व—सेवा में लगे; भजनीय—पूजा के योग्य; अद्भिम—उनको जिनके चरण कमल; अभवाय—संसार से उद्धार के लिए; भव-छिदम्—जो भौतिक बन्धन की ग्रंथि को काटता है; युक्तम्—संलग्न; विरहितम्—पृथक्, विलग; शक्त्या—उसकी शक्ति को; गुण-मय्या—त्रिगुणों से युक्त; आत्म-मायया—अपनी अकल्पनीय शक्ति से।

अतः तुम अपने आपको भगवान् की भक्ति में पूर्णरूपेण प्रवृत्त करो क्योंकि वे ही सांसारिक बन्धन से हमें छुटकारा दिला सकते हैं। अपनी भौतिक शक्ति में आसक्त रहकर भी वे उसके क्रियाकलापों से विलग रहते हैं। भगवान् की अकल्पनीय शक्ति से ही इस भौतिक जगत में प्रत्येक घटना घटती है।

तात्पर्य : यहाँ पर पिछले श्लोक से आगे विशेष रूप से उल्लेख है कि ध्रुव महाराज को भक्ति में प्रवृत्त होना चाहिए। भक्ति कभी भगवान् के निर्गुण पक्ष की नहीं हो सकती। जब भी भजस्व शब्द आता है, तो सेवक, सेवा तथा सेव्य ये तीनों होने चाहिए। भगवान् सेव्य हैं, सेवा करनेवाला सेवक है और प्रसन्न करने के लिए किये गये कार्यकलाप ही सेवा हैं। इस श्लोक में जो दूसरी बात कही गई है, वह यह कि केवल भगवान् की ही सेवा करनी चाहिए, अन्य किसी की नहीं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता में हुई है (मामेकं शरणं ब्रज)। देवताओं की सेवा करने की आवश्यकता नहीं है। वे परमेश्वर के हाथ-पाँव के समान हैं। जब परमेश्वर की सेवा की जाती है, तो उनके हाथ-पाँव की भी सेवा हो लेती है। अलग से सेवा करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। जैसाकि भगवद्गीता (१२.७) में कहा गया है—तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। इसका अर्थ यह हुआ कि भक्त का पक्ष लेने के लिए भगवान् उसके अन्दर से ऐसा निर्देश देते हैं कि अन्ततः वह भवबन्धन से मुक्त हो जाता है। परमेश्वर के

अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा नहीं है, जो जीवात्मा को इस जगत के बन्धन से छुड़ा सके। भौतिक शक्ति तो भगवान् की अनेक शक्तियों में से एक का प्राकट्य है (परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते)। यही भौतिक शक्ति भगवान् की शक्तियों में से एक है, जिस प्रकार उष्मा तथा प्रकाश अग्नि की शक्तियाँ हैं। भौतिक शक्ति परमेश्वर से भिन्न नहीं, किन्तु साथ ही परमेश्वर को इस शक्ति से कोई सरोकार नहीं रहता। जीवात्मा तो तटस्था शक्ति से युक्त है और वह भौतिक संसार पर प्रभुत्व जताने की अपनी इच्छा के अनुसार भौतिक शक्ति में फँसा हुआ है। भगवान् इससे विलग रहता है, किन्तु जब वही जीवात्मा उनकी भक्ति करने लगता है, तो वह उनमें आसक्त हो जाता है। यह स्थिति युक्तम् कहलाती है। भक्तों के लिए भगवान् भौतिक शक्ति में भी विद्यमान रहते हैं। यह भगवान् की अकल्पनीय शक्ति है। भौतिक शक्ति प्रकृति के तीनों गुणों में कार्य करती है, जिससे इस जगत के कार्य तथा कारण उत्पन्न होते हैं। जो भक्त नहीं हैं, वे ऐसे कार्यकलापों में लगे रहते हैं, जबकि भक्त लोग, जो ईश्वर से युक्त रहते हैं, भौतिक शक्ति के कार्य-कारण से मुक्त हो जाते हैं। इसीलिए यहाँ पर भगवान् को भवच्छिदम् कहा गया है, अर्थात् वे जो इस संसार के बन्धन से छुटकारा दिला सकते हैं।

वृणीहि कामं नृप यन्मनोगतं

मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशङ्कितः ।

वरं वरार्होऽम्बुजनाभपादयो-

रनन्तरं त्वां वयमङ्ग शुश्रुम ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

वृणीहि—माँगो; कामम्—इच्छा; नृप—हे राजा; यत्—जो कुछ; मनः-गतम्—तुम्हारे मन के भीतर है; मत्तः—मुझसे; त्वम्—तुम; औत्तानपदे—हे महाराज उत्तानपाद के पुत्र; अविशङ्कितः—बिना हिचक के; वरम्—वरदान; वर-अर्हः—वर प्राप्त करने के योग्य; अम्बुज—कमल; नाभ—जिसकी नाभि; पादयोः—उनके चरणकमलों पर; अनन्तरम्—निरन्तर; त्वाम्—तुमको; वयम्—हमने; अङ्ग—हे ध्रुव; शुश्रुम—सुना है।

हे महाराज उत्तानपाद के पुत्र, ध्रुव महाराज, हमने सुना है कि तुम कमलनाभ भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में निरन्तर लगे रहते हो। अतः तुम हमसे समस्त आशीर्वाद लेने के पात्र हो। अतः बिना हिचक के जो तुम वर माँगना चाहो माँग सकते हो।

तात्पर्य : उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव महाराज पहले से ही सारे विश्व में भगवान् के परमभक्त के रूप में विख्यात हो चुके थे। वे भगवान् के चरणकमलों का निरन्तर ध्यान करते थे। ऐसा शुद्ध, कल्मषरहित

भक्त देवताओं द्वारा प्रदान किये जाने वाला कोई भी आशीर्वाद ग्रहण करने का पात्र होता है। ऐसे आशीर्वादों के लिए उसे अलग से देवताओं की पूजा नहीं करनी होती। कुबेर देवों के धनपति हैं और वे स्वयं ध्रुव महाराज को मुँह-माँगा वरदान देने को कह रहे हैं। अतः श्रील बिल्वमंगल ठाकुर ने कहा है कि जो लोग भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं, उनके लिए समस्त भौतिक आशीर्वाद दासियों के समान प्रतीक्षा करते रहते हैं। भक्त के द्वार पर किसी भी समय मुक्ति देवी मुक्ति अथवा इससे भी अधिक प्रदान करने के लिए प्रतीक्षा करती रहती है। अतः भक्त होना सम्माननीय पद है। भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति द्वारा मनुष्य संसार के समस्त वरदान अनायास ही प्राप्त कर सकता है। कुबेर ने ध्रुव महाराज से कहा कि उन्होंने सुन रखा है कि ध्रुव सदैव समाधि में रहते हैं या भगवान् के चरणारविन्द का चिन्तन करते रहते हैं। दूसरे शब्दों में, उन्हें यह पता था कि ध्रुव महाराज को तीनों भौतिक लोकों में किसी वस्तु की इच्छा नहीं थी। उन्हें पता था कि वे भगवान् के चरणारविन्द को स्मरण करते रहने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं माँगेंगे।

मैत्रेय उवाच

स राजराजेन वराय चोदितो

ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ।

हरौ स वद्रेऽचलितां स्मृतिं यया

तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ऋषि ने कहा; सः—वह; राज-राजेन—राजाओं के राजा (कुबेर) द्वारा; वराय—आशीर्वाद के लिए; चोदितः—माँगने पर; ध्रुवः—ध्रुव महाराज; महा-भागवतः—प्रथम कोटि के भक्त; महा-मतिः—सर्वाधिक बुद्धिमान या विचारवान; हरौ—भगवान् के प्रति; सः—उसने; वद्रे—माँगा; अचलिताम्—स्थिर, अखण्ड; स्मृतिम्—स्मृति; यया—जिससे; तरति—पार करता है; अयत्नेन—बिना कठिनाई के; दुरत्ययम्—अलंघ्य, दुस्तर; तमः—अंधकार, अज्ञान।

महर्षि मैत्रेय ने आगे कहा : हे विदुर, जब यक्षराज कुबेर ने ध्रुव महाराज से वर माँगने के लिए कहा तो उस परम विद्वान् शुद्ध भक्त, बुद्धिमान तथा विचारवान् राजा ध्रुव ने यही याचना की कि भगवान् में उनकी अखंड श्रद्धा और स्मृति बनी रहे, क्योंकि इस प्रकार से मनुष्य अज्ञान के सागर को सरलता से पार कर सकता है, यद्यपि उसे पार करना अन्यो के लिए अत्यन्त दुस्तर है।

तात्पर्य : वैदिक अनुष्ठानों के दक्ष अनुयायियों के विचार से वर कई प्रकार के होते हैं जिनका

सम्बन्ध धार्मिकता, आर्थिक उन्नति, इन्द्रियतृप्ति तथा मुक्ति से हो सकता है। इन चारों नियमों को *चतुर्वर्ग* कहते हैं। इन सारे चतुर्वर्गों में से मोक्ष के वर को सर्वोपरि माना जाता है। मानव के लिए भौतिक अज्ञान को पार करने में समर्थ होने को सर्वोच्च पुरुषार्थ अर्थात् वरदान माना जाता है। किन्तु ध्रुव महाराज तो ऐसा वर चाहते थे, जो उच्चतम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष से भी बढ़कर हो। वे तो ऐसा वर चाहते थे जिससे वे भगवान् के चरणकमलों का निरन्तर स्मरण करते रहें। जीवन की यह अवस्था *पंचम पुरुषार्थ* कहलाती है। जब भक्त भगवान् की निरन्तर भक्ति करता हुआ इस पंचम पुरुषार्थ पद पर पहुँचता है, तो उसकी दृष्टि में चतुर्थ पुरुषार्थ अर्थात् मुक्ति तुच्छ लगने लगती है। इस प्रसंग में श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ने कहा है कि भक्त के लिए मुक्ति तो जीवन की नारकीय अवस्था है; जहाँ तक इन्द्रियतृप्ति का प्रश्न है, जो स्वर्गलोक में सुलभ है, भक्त इसे आकाश-पुष्प ही समझता है, जिसका जीवन में कोई मूल्य नहीं है। योगी अपनी इन्द्रियों को वश में करने का यत्न करता है, किन्तु भक्त के लिए इन्द्रिय-संयम कुछ भी कठिन नहीं है। इन्द्रियों की तुलना सर्पों से की गई है, किन्तु भक्तों के लिए ये सर्प विषदन्त से रहित हैं। इस प्रकार संसार में जितने भी प्रकार के वर हो सकते हैं उनका विश्लेषण श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ने किया है और यह स्पष्ट घोषणा की है कि शुद्ध भक्त के लिए उनका कोई महत्त्व नहीं है। ध्रुव महाराज महाभागवत भी थे। उनकी भक्त-बुद्धि अतीव महान् थी (*महा-मतिः*)। जब तक कोई अत्यन्त बुद्धिमान नहीं होता वह भक्तियोग अथवा कृष्णभावनामृत नहीं अपना सकता। अतः स्वाभाविक है कि प्रथम श्रेणी का भक्त प्रथम श्रेणी का बुद्धिमान व्यक्ति होता है और इसीलिए वह इस संसार में किसी भी प्रकार के वरदान में रुचि नहीं रखता। ध्रुव महाराज को राजाधिराज, देवताओं के धनपति कुबेर ने वरदान मांगने को कहा। उनका एकमात्र कार्य मनुष्यों को अपार सम्पत्ति प्रदान करना है। उन्हें राजाओं का राजा कहा गया है, क्योंकि जब तक कुबेर आशीष नहीं देते, कोई राजा नहीं बन सकता। राजाओं के राजा ने स्वयं ध्रुव महाराज को प्रभूत सम्पत्ति मांगने को कहा, किन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। इसलिए उन्हें *महामतिः* अर्थात् अत्यन्त विचारवान या अत्यधिक बुद्धिमान कहा गया है।

तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडस्ततः ।
पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—ध्रुव से; प्रीतेन—परम प्रसन्न होकर; मनसा—मन से; ताम्—उस स्मृति को; दत्त्वा—देकर; ऐडविडः—इडविडा का पुत्र, कुबेर; ततः—तत्पश्चात्; पश्यतः—जब ध्रुव देख रहे थे; अन्तर्दधे—अन्तर्धान हो गया; सः—वह (ध्रुव); अपि—भी; स्व-पुरम्—अपनी पुरी को; प्रत्यपद्यत—वापस चला गया।

इडविडा के पुत्र कुबेर अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक ध्रुव महाराज को मनचाहा वरदान दिया। तत्पश्चात् वे ध्रुव को देखते-देखते से अन्तर्धान हो गये और ध्रुव महाराज अपनी राजधानी वापस चले गये।

तात्पर्य : इडविडा का पुत्र कुबेर महाराज ध्रुव पर इसलिए अधिक प्रसन्न था क्योंकि उन्होंने भोग के योग्य कोई भौतिक वस्तु नहीं माँगी। कुबेर देवताओं में से एक हैं; अतः कोई यह तर्क कर सकता है कि ध्रुव महाराज ने किसी देवता से क्यों वरदान लिया? इसका उत्तर यही है कि वैष्णव के लिए देवता से ऐसा वर प्राप्त करने में कोई बन्धन नहीं जो कृष्ण चेतना को बढ़ाने वाला हो। उदाहरणार्थ, गोपियों ने देवी, कात्यायनी की पूजा की थी, किन्तु उन्होंने उनसे एकमात्र यही आशीर्वाद माँगा कि पति रूप में उन्हें कृष्ण प्राप्त हों। कोई भी वैष्णव देवताओं से अथवा भगवान् से किसी प्रकार का वर माँगने का इच्छुक नहीं रहता। *भगवत* में कहा गया है कि परम पुरुष द्वारा मुक्ति प्रदान की जा सकती है, किन्तु यदि भगवान् द्वारा मुक्ति भी प्रदान की जाये तो भक्त उसे अस्वीकार कर देता है। ध्रुव महाराज ने कुबेर से मुक्ति नहीं माँगी जिसमें वैकुण्ठलोक जाना होता है; उन्होंने केवल इतनी ही याचना की कि वे वैकुण्ठ या इस लोक में चाहे जहाँ भी रहें भगवान् का सदैव स्मरण करते रहें। वैष्णव सदा सबों का सम्मान करता है, अतः जब कुबेर ने उन्हें आशीर्वाद दिया तो उन्होंने उसे अस्वीकार नहीं किया। किन्तु वे ऐसी वस्तु चाहते थे, जो कृष्णचेतना को अग्रसर करने में सहायक हो।

अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अयजत—पूजा की; यज्ञ-ईशम्—यज्ञों के स्वामी की; क्रतुभिः—यज्ञोत्सवों द्वारा; भूरि—बड़ी; दक्षिणैः—दक्षिणा द्वारा; द्रव्य-क्रिया-देवतानाम्—यज्ञों का (जिसमें सामग्री, कार्य तथा देवता सम्मिलित हैं); कर्म—कर्म; कर्म-फल—कर्मों का परिणाम; प्रदम्—देनेवाला।

जब तक ध्रुव महाराज घर में रहे उन्होंने समस्त यज्ञों के भोक्ता भगवान् को प्रसन्न करने के लिए यज्ञोत्सव सम्पन्न किये। जितने भी संस्कार सम्बन्धी निर्दिष्ट यज्ञ हैं, वे भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के निमित्त हैं, क्योंकि वे ही ऐसे समस्त यज्ञों के लक्ष्य हैं और यज्ञ-जन्य आशीर्वादों के प्रदाता हैं।

तात्पर्य : भगवद्गीता (३.९) में कहा गया है— यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः— मनुष्य को चाहिए कि परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए ही कार्य करे, अन्यथा वह कर्म-फल में उलझ जाता है। वर्ण तथा आश्रम के चार विभागों के अनुसार विशेषतः ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों को महान् संस्कारोचित यज्ञ करने तथा संचित धन को उदारतापूर्वक वितरित करने की सलाह दी जाती है। ध्रुव महाराज ने एक राजा तथा आदर्श क्षत्रिय होने के नाते ऐसे अनेक यज्ञ किये और उदारतापूर्वक दान दिया। क्षत्रियों तथा वैश्यों से आशा की जाती है कि वे धन कमाकर उसका अधिकाधिक संग्रह करें। कभी-कभी वे पाप कर्मों द्वारा ऐसा करते हैं। क्षत्रिय देश पर शासन करने के लिए होते हैं; उदाहरणार्थ, ध्रुव महाराज को अपने शासन काल में यक्षों से युद्ध करना तथा उनका वध करना पड़ा। क्षत्रियों के लिए ऐसा कार्य आवश्यक है। क्षत्रिय को कायर नहीं होना चाहिए, न ही उसे अहिंसक होना चाहिए; देश पर शासन करने के लिए उसे हिंसात्मक कार्य भी करने होते हैं।

इसीलिए क्षत्रियों को अपनी संचित सम्पत्ति में से कम से कम पचास प्रतिशत दान देने की सलाह दी गई है। भगवद्गीता में संस्तुति की गई है कि संन्यास आश्रम में प्रविष्ट हो जाने पर भी यज्ञ, दान तथा तपस्या करना नहीं छोड़ना चाहिए। इनका कदापि त्याग न करें। तपस्या तो संन्यास आश्रम के लिए है; जो लोग सांसारिक कार्यों से विरक्त हो चुके हैं उन्हें तपस्या करनी चाहिए। जो क्षत्रिय तथा वैश्य भौतिक जगत में हैं उन्हें दान देना चाहिए। ब्रह्मचारियों को जीवन के प्रारम्भ में विभिन्न प्रकार के यज्ञ करने चाहिए।

आदर्श राजा के रूप में ध्रुव महाराज ने दान द्वारा अपना कोष लगभग खाली कर दिया। राजा का कार्य नागरिकों से केवल करों की वसूली करके धन संग्रह करना और उसको इन्द्रियतृप्ति में व्यय करना ही नहीं है। जब से राजाओं ने प्रजा से एकत्र किये गये करों को अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए व्यय

करना प्रारम्भ किया, तब से विश्व का राजतंत्र विफल हो गया है। वस्तुतः, चाहे राजतंत्र हो अथवा प्रजातंत्र, भ्रष्टाचार अभी भी सर्वत्र एक सा चल रहा है। इस समय प्रजातांत्रिक सरकार में विभिन्न दल होते हैं। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपनी कुर्सी बनाये रखने या अपने दल को सत्तारूढ़ बनाये रखने में व्यस्त है। राजनीतिज्ञों को जनता के कल्याण के विषय में सोचने के लिए तनिक भी समय नहीं मिलता जिसको आय कर, बिक्री कर इत्यादि के रूप में भारी कर लगाकर सताते हैं। कभी-कभी लोगों की आय का ८०-९० प्रतिशत कर में ले लिया जाता है और इसको अफसरों तथा शासनकर्ताओं के उच्च वेतन को चुकता करने में मनमाने ढंग से व्यय कर दिया जाता है। प्राचीन काल में, नागरिकों से एकत्र किया गया कर बड़े-बड़े यज्ञों को सम्पन्न करने में व्यय किया जाता था जैसाकि वैदिक साहित्य में आदेश है। किन्तु सम्प्रति सभी प्रकार के यज्ञों को कर पाना बिल्कुल असम्भव है, अतः शास्त्रों में यह संस्तुति की गई है कि लोग *संकीर्तन यज्ञ* करें। कोई भी गृहस्थ चाहे कैसी भी स्थिति में हो बिना खर्च के *संकीर्तन यज्ञ* कर सकता है। परिवार के सभी सदस्य एकसाथ बैठकर ताली बजा-बजाकर हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन कर सकते हैं। किसी न किसी प्रकार सभी लोग ऐसा यज्ञ कर सकते हैं और लोगों को प्रसाद वितरित कर सकते हैं। इस कलियुग के लिए यही पर्याप्त है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी सिद्धान्त पर आधारित है—जहाँ तक सम्भव हो, मंदिर में या उससे बाहर प्रत्येक क्षण हरे कृष्ण मंत्र का जप करे तथा यथासम्भव प्रसाद वितरित करे। इस प्रक्रम को राज्य प्रशासकों के तथा जो देश की सम्पत्ति को उत्पन्न करते हैं उनके सहयोग से आगे बढ़ाया जा सकता है। मात्र प्रसाद के वितरण तथा *संकीर्तन* से सारा विश्व शान्तिपूर्ण तथा समृद्ध बन सकता है।

सामान्यतः वैदिक साहित्य में जितने भी यज्ञों की संस्तुति की गई है उनमें देवताओं को भेंट चढ़ाई जाती है। देवताओं की पूजा कम बुद्धि वाले लोगों के लिए है। वास्तव में ऐसे यज्ञों का फल भगवान् नारायण को प्राप्त होता है। *भगवद्गीता* (५.२९) में भगवान् कृष्ण कहते हैं— *भोक्तारं यज्ञतपसां*—वे ही समस्त यज्ञों के वास्तविक भोक्ता हैं। इसीलिए उनका नाम यज्ञपुरुष है।

यद्यपि ध्रुव महाराज महान् भक्त थे और उन्हें इन यज्ञों से कुछ लेना-देना नहीं था, किन्तु अपनी प्रजा के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने अनेक यज्ञ किये और अपनी सारी सम्पत्ति दान में दे

दी। जब तक वे गृहस्थ के रूप में रहे, उन्होंने अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए एक दमड़ी भी खर्च नहीं किया। इस श्लोक में *कर्म-फलप्रदम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भगवान् जीवात्माओं के इच्छानुसार सबों को भिन्न-भिन्न कर्म प्रदान करते हैं, वे प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परमात्मा के रूप में स्थित रहते हैं और वे इतने दयालु तथा उदार हैं कि जो कोई जो कुछ करना चाहता है वे उसके लिए सारी सुविधाएँ प्रदान करते हैं। तब जीवात्मा अपने कर्मों के फल को भी भोगता है। यदि कोई सुख भोगना चाहता है या भौतिक प्रकृति पर अधिकार जताना चाहता है, तो भगवान् इसकी भी सुविधा प्रदान करते हैं किन्तु वह कर्मफल में उलझ जाता है। इसी प्रकार यदि कोई पूर्णरूपेण भक्ति करना चाहता है, तो भगवान् उसे सारी सुविधाएँ प्रदान करते हैं और भक्त उसका फल भोगता है। इसीलिए भगवान् *कर्म-फलप्रद* नाम से विख्यात हैं।

सर्वात्मन्यच्युतेऽसर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्रहन् ।
ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सर्व-आत्मनि—परमात्मा में; अच्युते—अच्युत में; असर्वे—किसी सीमा के बिना, असीम; तीव्र-ओघाम्—प्रबल वेग युक्त; भक्तिम्—भक्ति; उद्रहन्—करते हुए; ददर्श—देखा; आत्मनि—परम आत्मा में; भूतेषु—समस्त जीवात्माओं में; तम्—उसको; एव—केवल; अवस्थितम्—स्थित, विराजमान; विभुम्—सर्वशक्तिमान।

ध्रुव महाराज निर्बाध-बल के साथ हर वस्तु के आगार परमेश्वर की भक्ति करने लगे। भक्ति करते हुए उन्हें ऐसा दिखता मानो प्रत्येक वस्तु उन्हीं (भगवान्) में स्थित है और वे समस्त जीवात्माओं में स्थित हैं। भगवान् अच्युत कहलाते हैं, क्योंकि वे कभी भी अपने भक्तों को सुरक्षा प्रदान करने के मूल कर्तव्य से चूकते नहीं।

तात्पर्य : ध्रुव महाराज ने न केवल अनेक यज्ञ किये, अपितु उन्होंने भगवान् की दिव्य भक्ति भी जारी रखी। जैसाकि वैदिक शास्त्रों में आदेश है, सामान्य कर्मी लोग, जो अपने सकाम कर्मों का फल भोगना चाहते हैं, अपने को यज्ञ तथा अनुष्ठानों तक ही सीमित रखते हैं। यद्यपि ध्रुव महाराज ने आदर्श राजा होने के उद्देश्य से अनेक यज्ञ किये थे तो भी वे निरन्तर भक्तियोग में लगे रहे। भगवान् शरणागत भक्तों की सदा से रक्षा करते आये हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है (ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति) भक्त भगवान् को प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित देखता है। सामान्य व्यक्ति नहीं

समझ पाते कि भगवान् प्रत्येक हृदय में किस प्रकार स्थित रह सकता है, किन्तु भक्त उन्हें वास्तव में स्थित देख सकता है। वह न केवल उनका बाह्य दर्शन करता है, अपितु अपनी आत्मदृष्टि से यह भी देख पाता है कि भगवान् पर ही सब कुछ टिका है, जैसाकि *भगवद्गीता* में कथित है (*मत्स्थानि सर्वभूतानि*)। यही महाभागवत की दृष्टि है। वह भी सबों की भाँति सब कुछ देखता है, किन्तु केवल वृक्ष, पर्वत, नगर या आकाश को न देखकर वह इन वस्तुओं में अपने पूज्य परमेश्वर को देखता है, क्योंकि सभी वस्तुएँ उन्हीं पर टिकी हैं। यह महाभागवत की दृष्टि है। संक्षेप में कह सकते हैं कि महाभागवत अत्यन्त महान् शुद्ध भक्त है, जो भगवान् को सर्वत्र तथा सबों के हृदयों में स्थित देखता है। ऐसा उन भक्तों के लिए सम्भव है जिन्होंने भगवान् के प्रति उच्च भक्ति-भाव उत्पन्न कर रखा है। जैसाकि *ब्रह्म संहिता* में (५.३८) कहा गया है—*प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्तिविलोचनेन*—जिन्होंने भगवत्प्रेम रूपी अंजन को नेत्रों में लगा रखा है, वे ही परमेश्वर का सर्वत्र साक्षात्कार कर पाते हैं, कल्पना या तथाकथित ध्यान से ऐसा सम्भव नहीं।

तमेवं शीलसम्पन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् ।
गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; एवम्—इस प्रकार; शील—दैवी गुण से; सम्पन्नम्—युक्त; ब्रह्मण्यम्—ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धालु; दीन—निर्धनों के प्रति; वत्सलम्—दयालु; गोप्तारम्—रक्षक; धर्म-सेतूनाम्—धार्मिक नियमों का; मेनिरे—सोचा; पितरम्—पिता; प्रजाः—जनता ।

ध्रुव महाराज सभी दैवी गुणों से सम्पन्न थे; वे भगवान् के भक्तों के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु, दीनों तथा निर्दोषों के प्रति दयालु एवं धर्म की रक्षा करनेवाले थे। इन गुणों के कारण वे समस्त नागरिकों के पिता तुल्य समझे जाते थे।

तात्पर्य : यहाँ पर ध्रुव महाराज के जिन व्यक्तिगत गुणों का वर्णन हुआ है, वे साधु स्वरूप राजा के आदर्श गुण हैं। केवल राजा ही नहीं, वरन् आज की प्रजातांत्रिक सरकार के नेताओं में भी ये देवतुल्य गुण होने चाहिए, तभी राज्य के नागरिक सुखी रह सकते हैं। यहाँ पर यह स्पष्ट बताया गया है कि नागरिक ध्रुव महाराज को अपने पिता समान मानते थे। जिस प्रकार से बालक अपने सुयोग्य पिता पर आश्रित रहकर पूर्ण रूप से सन्तुष्ट रहता है उसी प्रकार राज्य के नागरिकों को राज्य अथवा राजा द्वारा

सुरक्षा मिलने पर सभी प्रकार से सन्तुष्ट रहना चाहिए। किन्तु आजकल राज्य में सरकार की ओर से जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं, अर्थात् धन तथा जन की सुरक्षा, की भी कोई गारंटी नहीं है।

इस प्रसंग में *ब्रह्मण्यम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ध्रुव महाराज ब्रह्मणों के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु थे जो वेदों के अध्ययन में लगे रहते थे तथा परिणाम स्वरूप भगवान् के बारे में ज्ञान अर्जित किये रहते थे। वे ब्राह्मण निरन्तर कृष्णभक्ति का प्रसार करते हैं। राज्य को चाहिए कि जो भी संस्थाएँ सारे विश्व में ईश्वर-चेतना का प्रसार करती हैं उनका सम्मान करे, किन्तु दुर्भाग्यवश आज कल ऐसी एक भी सरकार या राज्य नहीं जो ऐसे आन्दोलनों की सहायता करता हो। जहाँ तक सद्गुणों का प्रश्न है, राज-प्रशासन में ऐसा एक भी व्यक्ति पाना कठिन है, जो सद्गुणों से युक्त हो। प्रशासकगण कुर्सी पर बैठकर हर प्रार्थना को अस्वीकार करते रहते हैं, मानो उन्हें इसी के लिए वेतन मिलता है। एक अन्य शब्द *दीनवत्सलम्* भी महत्त्व का है। राज्य के मुखिया को दीनों के प्रति दयालु होना चाहिए। दुर्भाग्यवश, इस युग में राज्य के एजेन्ट तथा अध्यक्ष राज्य से उच्च वेतन प्राप्त करते हैं और अपने को पवित्र मानते हैं, किन्तु वे उन कसाईघरों को चलने देते हैं जहाँ निर्दोष पशुओं का वध होता है। यदि हम ध्रुव महाराज के सद्गुणों तथा आज के राजनीतिज्ञों के गुणों की तुलना करें तो देखेंगे कि इन दोनों में असल में कोई तुलना है ही नहीं। ध्रुव महाराज सत्ययुग में हुए थे (जैसाकि अगले श्लोकों से स्पष्ट है); वे सत्ययुग के आदर्श राजा थे। इस कलियुग में सरकारी प्रशासन समस्त सद्गुणों से शून्य है। इन सब बातों पर विचार करते हुए आज मनुष्यों के समक्ष धर्म, जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिए कृष्णभक्ति (कृष्ण-चेतना) ग्रहण करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह गया है।

षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् ।

भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

षट्-त्रिंशत्—छत्तीस; वर्ष—वर्ष; साहस्रम्—हजार; शशास—राज्य किया; क्षिति-मण्डलम्—पृथ्वी लोक में; भोगैः—भोग द्वारा; पुण्य—पवित्र कार्यों के फल का; क्षयम्—हानि, हास; कुर्वन्—करते हुए; अभोगैः—तपस्या से; अशुभ—अशुभ फलों का; क्षयम्—हास।

ध्रुव महाराज ने इस लोक पर छत्तीस हजार वर्षों तक राज्य किया; उन्होंने पुण्यों को भोग द्वारा और अशुभ फलों को तपस्या द्वारा क्षीण बनाया।

तात्पर्य : ध्रुव महाराज ने इस लोक पर छत्तीस हजार वर्षों तक राज्य किया जिसका अर्थ यह हुआ कि वे सत्ययुग में विद्यमान थे, क्योंकि सत्ययुग में लोग एक लाख वर्षों तक जीवित रहते थे। उसके बाद के युग त्रेता में लोग दस हजार वर्ष तक और उसके अगले गुण द्वापर में एक हजार वर्ष तक जीते थे। आज के कलियुग में जीवन की अधिकतम अवधि एक सौ वर्ष है। युग-परिवर्तन के साथ जीवन अवधि तथा स्मृति, दयाभाव तथा अन्य सभी सद्गुणों का ह्रास होता रहता है। कार्य दो तरह के होते हैं—पवित्र तथा अपवित्र। पवित्र कार्य (पुण्य) करने से उच्च सुखोपभोग की सुविधा मिल सकती है, किन्तु अपवित्र कार्यों से कठिन दुख झेलना पड़ता है। किन्तु भक्त की रुचि न तो भोग में रहती है न ही वह दुख से प्रभावित होता है। जब वह श्रीसम्पन्न होता है, तो वह जानता है कि मैं अपने पुण्यों को क्षीण कर रहा हूँ और जब दुख में होता है, तो वह जानता है कि मैं अपने अपवित्र कार्यों (पापों) के फल क्षय कर रहा हूँ। भक्त को सुख या दुख की परवाह नहीं रहती, वह तो केवल भक्ति करना चाहता है। *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है कि भक्ति को *अप्रतिहता* होना चाहिए अर्थात् भौतिक सुख या दुख की अवस्थाओं से बाधित होना चाहिए। भक्त अनेक प्रकार की तपस्याएं करता है, यथा वह एकादशी तथा अन्य व्रत रखता है; अवैध कामवासना से दूर रहता है, मद्यसेवन, द्यूतक्रीड़ा तथा मांसाहार से अपने को दूर रखता है। इस प्रकार वह अपने पूर्व अपवित्र जीवन के फलों से शुद्ध होता है और चूँकि वह अत्यन्त पवित्र कार्य, भक्ति, में प्रवृत्त होता है, अतः बिना अतिरिक्त प्रयास के इस जीवन का सुख भोगता है।

एवं बहुसवं कालं महात्माविचलेन्द्रियः ।

त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादानृपासनम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; बहु—अनेक; सवम्—वर्ष; कालम्—समय; महा-आत्मा—महान् पुरुष; अविचल-इन्द्रियः—इन्द्रियों के चलायमान हुए बिना; त्रि-वर्ग—तीन प्रकार के सांसारिक कार्य; औपयिकम्—करने के अनुकूल; नीत्वा—बिता करके; पुत्राय—अपने पुत्र को; अदात्—प्रदान कर दिया; नृप-आसनम्—राज-सिंहासन।

इस प्रकार आत्मसंयमी महापुरुष ध्रुव महाराज ने तीन प्रकार के सांसारिक कार्यों—धर्म, अर्थ, तथा काम—को ठीक तरह से अनेकानेक वर्षों तक सम्पन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पुत्र को राजसिंहासन सौंप दिया।

तात्पर्य : धर्म का पालन करने से भौतिक जीवन की पूर्णता प्राप्त होती है। इससे स्वतः आर्थिक विकास होता है और तब समस्त भौतिक इच्छाओं को पूरा करने में कोई कठिनाई नहीं होती। चूँकि राजा के रूप में ध्रुव महाराज को अपनी स्थिति बनाये रखना था, अन्यथा प्रजा पर शासन करना सम्भव न था अतः उन्होंने इसे अच्छी तरह निभाया। जब उन्होंने देखा कि उनका पुत्र बड़ा हो गया है और राजसिंहासन का भार ग्रहण कर सकता है, तो वे तुरन्त ही अपना भार उतार कर सांसारिक व्यस्तताओं से विरक्त हो गये।

यहाँ पर प्रयुक्त एक शब्द *अविचलोन्द्रिय* अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है कि उनकी इन्द्रियाँ विचलित नहीं हुईं, न ही उनकी इन्द्रियशक्ति घटी, यद्यपि आयु की दृष्टि से वे अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे। चूँकि उन्होंने छत्तीस हजार वर्षों तक राज्य किया था, अतः निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे, किन्तु उनकी इन्द्रियाँ तरुण थीं, तो भी वे इन्द्रियतृप्ति में रुचि नहीं रखते थे। दूसरे शब्दों में, वे आत्म-संयमी बने रहे। उन्होंने अपने कर्तव्य सही ढंग से सांसारिक रीति से पूरे किए। यही महान् भक्तों की व्यवहार-प्रणाली है। भगवान् चैतन्य के एक महान् शिष्य श्रील रघुनाथदास गोस्वामी एक धनी व्यक्ति के पुत्र थे। उन्हें सांसारिक सुख भोगने की तनिक भी इच्छा न थी, किन्तु जब उन्हें सूबे का प्रबन्ध करने का भार सौंपा गया तो वे उसे सुचारु रूप से करते रहे। श्रील गौरसुन्दर ने उन्हें सलाह दी कि अन्दर से तुम अपने आपको तथा अपने मन को पूर्ण रूप से पृथक् रखो, किन्तु बाहर से सारे कार्य उसी तरह करते रहो जिस रूप में वे होने चाहिए। ऐसी दिव्य स्थिति केवल भक्त ही प्राप्त कर सकते हैं, जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—जहाँ योगी अपनी इन्द्रियों को बलपूर्वक वश में करना चाहते हैं, वहीं भक्तजन पूर्ण इन्द्रिय-शक्तियों से युक्त होने पर भी उनका प्रयोग नहीं करते, क्योंकि वे उन्हें उच्चतर दिव्य कर्मों में लगाते हैं।

मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि ।

अविद्यारचितस्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

मन्यमानः—मानते हुए; इदम्—यह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; माया—बहिरंगा शक्ति द्वारा; रचितम्—निर्मित; आत्मनि—जीवात्मा को; अविद्या—मोह से; रचित—निर्मित; स्वप्न—स्वप्न; गन्धर्व-नगर—मायाजाल; उपमम्—सदृश।

श्रील ध्रुव महाराज को अनुभव हो गया कि यह दृश्य-जगत जीवात्माओं को स्वप्न अथवा मायाजाल के समान मोहग्रस्त करता रहता है, क्योंकि यह परमेश्वर की बहिरंगा शक्ति माया की सृष्टि है।

तात्पर्य : कभी-कभी घने जंगल में ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ बड़े-बड़े प्रासाद तथा सुन्दर नगर हैं। इन्हें पारिभाषिक शब्दों में गंधर्व नगर कहते हैं। इसी प्रकार स्वप्न में भी हम कल्पना से अनेक मिथ्या वस्तुओं की सृष्टि करते रहते हैं। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति अथवा भक्त यह भलीभाँति जानता है कि यह दृश्य जगत क्षणिक है और माया-रूप बनकर सत्य प्रतीत हो रहा है। यह मायाजाल के सदृश्य है। किन्तु इस छाया-सृष्टि के पीछे वास्तविकता रहती है और वह है आध्यात्मिक-जगत। भक्त तो आध्यात्मिक-जगत में रुचि रखता है, इसकी छाया में उसकी रुचि नहीं रहती। चूँकि उसे परम सत्य का बोध हो चुका होता है इस कारण वह सत्य की क्षणिक छाया में रुचि नहीं दिखाता। इसकी पुष्टि भगवद्गीता में हुई है (परं दृष्ट्वा निवर्तते)।

आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोश-

मन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ।

भूमण्डलं जलधिमेखलमाकलय्य

कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

आत्म—शरीर; स्त्री—पत्नियाँ; अपत्य—सन्तानें; सुहृदः—मित्र; बलम्—प्रभाव, सेना; ऋद्ध-कोशम्—समृद्ध खजाना; अन्तः-पुरम्—रनिवास; परिविहार-भुवः—क्रीड़ा-स्थल; च—तथा; रम्याः—सुन्दर; भू-मण्डलम्—पूरी पृथ्वी; जल-धि—समुद्रों द्वारा; मेखलम्—घिरा; आकलय्य—मान कर; काल—समय द्वारा; उपसृष्टम्—उत्पन्न; इति—इस प्रकार; सः—वह; प्रययौ—चला गया; विशालाम्—बदरिकाश्रम को।

अन्त में ध्रुव महाराज ने सारी पृथ्वी पर फैले और महासागरों से घिरे अपने राज्य को त्याग दिया। उन्होंने अपने शरीर, पत्नियों, सन्तानों, मित्रों, सेना, समृद्ध कोश, सुखकर महलों तथा विनोद-स्थलों को माया की सृष्टियाँ मान लिया। इस तरह वे कालक्रम में हिमालय पर्वत पर स्थित बदरिकाश्रम के वन में चले गये।

तात्पर्य : जीवन के प्रारम्भ में जब ध्रुव महाराज भगवान् की खोज में जंगल गये थे तो उन्होंने यह अनुभव किया था कि सभी शारीरिक सुख माया की उपज हैं। निस्सन्देह शुरू-शुरू में वे अपने पिता

का राज्य चाहते थे और इसी की प्राप्ति के लिए भगवान् की खोज में निकले थे। किन्तु बाद में उन्होंने यह अनुभव किया कि हर वस्तु माया द्वारा उत्पन्न है। श्रील ध्रुव महाराज के कार्यों से हम यह समझ सकते हैं कि यदि कोई शुरु में किसी भी लक्ष्य को लेकर कृष्णभावनाभावित हो जाता है, तो अन्त में उसे वास्तविक सत्य का बोध हो जाएगा। प्रारम्भ में ध्रुव महाराज अपने पिता का राज्य प्राप्त करने की धुन में थे, किन्तु बाद में वे महाभागवत बन गये और भौतिक सुख से उनकी रुचि जाती रही। जीवन की पूर्णता केवल भक्त ही प्राप्त कर सकते हैं। यदि कोई भक्ति का शतांश ही पूरा करके अपरिपक्व अवस्था में भ्रष्ट हो जाता है, तब भी वह उस मनुष्य से श्रेष्ठ है, जो इस जगत के सकाम कर्मों में लगातार लगा रहता है।

तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य

बद्ध्वासनं जितमरुन्मनसाहताक्षः ।

स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्

ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—बदरिकाश्रम में; विशुद्ध—शुद्ध करके; करणः—अपनी इन्द्रियाँ; शिव—शुद्ध; वाः—जल में; विगाह्य—स्नान करके; बद्ध्वा—स्थिर करके; आसनम्—आसन; जित—जीतकर; मरुत्—श्वासक्रिया; मनसा—मन से; आहृत—हट गई; अक्षः—इन्द्रियाँ; स्थूले—भौतिक; दधार—केन्द्रित किया; भगवत्-प्रतिरूपे—भगवान् के स्थूल रूप में; एतत्—मन; ध्यायन्—ध्यान करते हुए; तत्—उस; अव्यवहितः—बिना रुके; व्यसृजत्—प्रवेश किया; समाधौ—समाधि में।

बदरिकाश्रम में ध्रुव महाराज की इन्द्रियाँ पूर्णतः शुद्ध हो गई क्योंकि वे स्वच्छ शुद्ध जल में नियमित रूप से स्नान करते थे। वे आसन पर स्थित हो गये और फिर उन्होंने योगक्रिया से श्वास तथा प्राणवायु को वश में किया। इस प्रकार उन्होंने अपनी इन्द्रियों को पूर्ण रूप से समेट लिया। तब उन्होंने अपने मन को भगवान् के अर्चाविग्रह रूप में केन्द्रित किया जो भगवान् का पूर्ण प्रतिरूप है और इस प्रकार से उनका ध्यान करते हुए वे पूर्ण समाधि में प्रविष्ट हो गये।

तात्पर्य : यहाँ पर अष्टांग-योग-पद्धति का वर्णन हुआ है, जिसके ध्रुव महाराज पहले से अभ्यस्त थे। अष्टांग-योग किसी चकाचौंध वाले शहर में अभ्यास करने के लिए कभी नहीं था। अतः ध्रुव महाराज बदरिकाश्रम गये और एकान्त स्थान में योगाभ्यास करने लगे। उन्होंने अपना मन अर्चा-विग्रह पर केन्द्रित किया, जो परमेश्वर का सही प्रतिनिधित्व करता है और इस प्रकार इस विग्रह का निरन्तर

चिन्तन करते हुए वे समाधि में लीन हो गये। अर्चा-विग्रह की पूजा मूर्तिपूजा नहीं है। अर्चा-विग्रह तो भक्तों को ग्राह्य भगवान् के अवतार का प्रतिरूप है। अतः भक्तगण मन्दिर में भगवान् की सेवा अर्चा-विग्रह रूप में करते हैं, जो स्थूल पदार्थ यथा पत्थर, धातु, काष्ठ, रत्न या रंग का बना स्वरूप है। ये सभी पदार्थ स्थूल अथवा भौतिक प्रतीक कह जाते हैं। चूँकि भक्तगण पूजा के विधि-विधान का पालन करते हैं, अतः वहाँ पर भौतिक रूप में होते हुए भी भगवान् अपने आदि आत्म-रूप से अभिन्न रहते हैं। इस प्रकार भक्त को जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त होता है, अर्थात् वह भगवान् के विचार में लीन रहता है। भगवान् का यह निरन्तर विचार, जिसकी संस्तुति *भगवद्गीता* में की गई है, मनुष्य को सर्वोच्च योगी बना देता है।

भक्ति हरौ भगवति प्रवहन्नजस्र-

मानन्दबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ।

विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाचिताङ्गो

नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

भक्तिम्—भक्ति; हरौ—हरि में; भगवति—भगवान्; प्रवहन्—निरन्तर लगे रह कर; अजस्रम्—सदैव; आनन्द—आनन्दमय; बाष्प-कलया—आँसुओं की धारा से; मुहुः—बारम्बार; अर्द्यमानः—अभिभूत होकर; विक्लिद्यमान—द्रवित; हृदयः—उसका हृदय; पुलक—रोमांच; आचित—ढका; अङ्गः—उसका शरीर; न—नहीं; आत्मानम्—शरीर; अस्मरत्—स्मरण किया; असौ—वह; इति—इस प्रकार; मुक्त-लिङ्गः—सूक्ष्म शरीर से मुक्त।

दिव्य आनन्द के कारण उनके नेत्रों से सतत अश्रु बहने लगे, उनका हृदय द्रवित हो उठा और पूरे शरीर में कम्पन तथा रोमांच हो आया। भक्ति की समाधि में पहुँचने से ध्रुव महाराज अपने शारीरिक अस्तित्व को पूर्णतः भूल गये और तुरन्त ही भौतिक बन्धन से मुक्त हो गये।

तात्पर्य : निरन्तर भक्ति में लगे रहने से, जैसाकि नवधा भक्ति में संस्तुत है, भक्त के शरीर में विभिन्न लक्षण प्रकट होते हैं। ये आठ शारीरिक भाव, जिनसे पता चलता है कि भक्त भीतर से मुक्त हो चुका है, *अष्ट सात्विक* विकार कहलाते हैं। जब भक्त को अपने शरीर की रंच भर भी सुधि नहीं रह जाती तो समझना चाहिए कि वह मुक्त हो गया है। वह शरीर में बद्ध नहीं रहा है। यहाँ पर उदाहरण दिया जा सकता है कि जब नारियल पूरी तरह सूख जाता है, तो बाह्य खोल से भीतर की गरी विलग हो जाती है। सूखे नारियल को हिलाने से पता चलता है कि अन्दर की गरी बाहरी कोश या छिलके से

लगी नहीं है। इसी प्रकार जब कोई भक्ति में पूर्ण रूप से लीन हो जाता है, तो वह सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर रूपी भौतिक छिलकों से सर्वथा विलग हो जाता है। ध्रुव महाराज को जीवन की यह अवस्था निरन्तर भक्ति करते रहने से प्राप्त हो चुकी थी। उन्हें पहले ही *महाभागवत* कहा गया है, क्योंकि जब तक कोई *महाभागवत* अर्थात् उच्च कोटि का भक्त नहीं बन जाता, तब तक ये लक्षण प्रकट नहीं होते। भगवान् चैतन्य में ये समस्त लक्षण प्रकट थे। ठाकुर हरिदास में भी ये प्रकट थे और ऐसे अनेक भक्त हैं जिनमें ये लक्षण प्रकट रहते हैं। इनकी नकल नहीं की जानी चाहिए, किन्तु जब कोई सचमुच ही आगे बढ़ जाता है, तो ये लक्षण प्रकट होते हैं। उस समय यह समझना चाहिए कि भक्त भौतिक रूप से मुक्त हो गया है। निस्सन्देह, भक्ति प्रारम्भ करते ही मुक्ति का मार्ग खुल जाता है, जिस प्रकार पेड़ से तोड़ा गया नारियल तुरन्त सूखने लगता है; गरी को खोल से विलग होने में कुछ समय अवश्य लगता है।

इस श्लोक में एक महत्त्वपूर्ण शब्द आया है— *मुक्त-लिङ्ग* जिसका अर्थ है मुक्त सूक्ष्म शरीर। जब मनुष्य मरता है, तो वह स्थूल देह को त्याग देता है, किन्तु मन, बुद्धि तथा अहंकार का सूक्ष्म शरीर उसे नवीन देह में ले जाता है। इस देह में रहकर, वही सूक्ष्म देह मनुष्य को मानसिक विकास के कारण जीवन की एक अवस्था से दूसरे में ले जाती है। छोटे शिशु की मानसिक दशा बालक की दशा से भिन्न होती है और बालक की तरुण से तथा तरुण की वृद्ध पुरुष से भिन्न होती है। अतः मृत्यु के समय देहों का परिवर्तन सूक्ष्म देह के कारण होता है; मन, बुद्धि तथा अहंकार आत्मा को एक स्थूल देह से दूसरे में ले जाते हैं। यह आत्मा का देहान्तर कहलाता है। किन्तु एक अन्य अवस्था भी होती है, जब मनुष्य इस सूक्ष्म देह से भी मुक्त हो जाता है। उस समय जीवात्मा दिव्य या आत्मजगत को स्थानान्तरित होने के लिए पूरी तरह तैयार रहता है।

ध्रुव महाराज के शारीरिक लक्षणों के वर्णन से पता चलता है कि वे आध्यात्मिक (वैकुण्ठ धाम) में स्थानान्तरित होने के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त थे। हम दैनिक जीवन में भी सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर का अनुभव कर सकते हैं। स्वप्न में मनुष्य का देह बिस्तर पर पड़ा रहता है, किन्तु सूक्ष्म देह, आत्मा, अर्थात् जीवात्मा को दूसरे परिवेश में ले जाता है। किन्तु स्थूल देह को बनाये रखना होता है इसलिए सूक्ष्म देह वापस चला आता है और स्थूल देह में पुनः बस जाता है। अतः मनुष्य को सूक्ष्म देह से भी

स्वतंत्र होना पड़ता है। यह स्वतंत्रता मुक्त-लिङ्ग कहलाती है।

स ददर्श विमानाच्छयं नभसोऽवतरद्ध्रुवः ।

विभ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; ददर्श—देखा; विमान—विमान; अछयम्—अत्यन्त सुन्दर; नभसः—आकाश से; अवतरत्—उतरते हुए; ध्रुवः—ध्रुव महाराज; विभ्राजयत्—आलोकित करते हुए; दश—दस; दिशः—दिशाएँ; राका-पतिम्—पूर्णचन्द्र; इव—सदृश; उदितम्—उदित।

ज्योंही उनकी मुक्ति के लक्षण प्रकट हुए, उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दर विमान को आकाश से नीचे उतरते हुए देखा, मानो तेजस्वी पूर्ण चन्द्रमा दशों दिशाओं को आलोकित करते हुए नीचे आ रहा हो।

तात्पर्य : अर्जित ज्ञान कई प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष ज्ञान, अधिकारियों से प्राप्त ज्ञान, दिव्य ज्ञान, इन्द्रियातीत ज्ञान और अंततः आत्म-ज्ञान। जब मनुष्य अवरोही विधि से ज्ञान प्राप्त करने की अवस्था को लाँघ जाता है, तो वह तुरन्त दिव्य पद को प्राप्त हो जाता है। ध्रुव महाराज देहात्मबुद्धि से मुक्त होकर दिव्य ज्ञान को प्राप्त थे, अतः वे दिव्य विमान को देख सकते थे, जो पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रकाशमान था। ज्ञान की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अनुभूति से ऐसा कर पाना सम्भव नहीं। ऐसा ज्ञान तो भगवान् की विशेष कृपा से प्राप्त होता है। किन्तु भक्ति या कृष्णचेतना की ओर क्रमशः अग्रसर होने से मनुष्य ज्ञान के इस पद को प्राप्त कर सकता है।

तत्रानु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ

श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ ।

स्थिताववष्टभ्य गदां सुवाससौ

किरीटहाराङ्गदचारुकुण्डलौ ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; अनु—तब; देव-प्रवरौ—दो अत्यन्त सुन्दर देवता; चतुः-भुजौ—चार भुजाओं वाले; श्यामौ—श्याम वर्ण के; किशोरौ—अत्यन्त तरुण; अरुण—लाल; अम्बुज—कमल; ईक्षणौ—आँखों वाले; स्थितौ—स्थित; अवष्टभ्य—लिये; गदाम्—गदा; सुवाससौ—सुन्दर वस्त्रों से युक्त; किरीट—मुकुट; हार—माला; अङ्गद—बिजावट; चारु—सुन्दर; कुण्डलौ—कान के कुण्डल सहित।

ध्रुव महाराज ने विमान में भगवान् विष्णु के दो अत्यन्त सुन्दर पार्षदों को देखा। उनके चार भुजाएँ थीं और श्याम वर्ण की शारीरिक कान्ति थी, वे अत्यन्त तरुण थे और उनके नेत्र लाल

कमल-पुष्पों के समान थे। वे हाथों में गदा धारण किये थे और उनकी वेशभूषा अत्यन्त आकर्षक थी। वे मुकुट धारण किये थे और हारों, बाजूबन्दों तथा कुण्डलों से सुशोभित थे।

तात्पर्य : विष्णुलोक के वासी भगवान् विष्णु के ही समान शारीरिक लक्षण वाले होते हैं। वे भी गदा, शंख, कमल तथा चक्र धारण करते हैं। इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि उनके चार हाथ थे और वे सुन्दर वस्त्रों से आभूषित थे। उनके शारीरिक अलंकरण का वर्णन विष्णु से मेल खाता था। अतः विमान द्वारा जो दो असामान्य व्यक्ति आये वे विष्णुलोक से सीधे आये थे।

विज्ञाय तावुत्तमगायकिङ्करा-

वभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः ।

ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः

पार्षत्प्रधानाविति संहताञ्जलिः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

विज्ञाय—जानकर; तौ—उन दोनों को; उत्तम-गाय—(उत्तम यशवाले) विष्णु के; किङ्करौ—दो दास; अभ्युत्थितः—खड़ा हो गया; साध्वस—हड़बड़ा कर; विस्मृत—भूल गया; क्रमः—उचित व्यवहार; ननाम—नमस्कार किया; नामानि—नामों को; गृणन्—उच्चारण करते, जपते; मधु-द्विषः—मधु के शत्रु, भगवान् के; पार्षत्—पार्षद; प्रधानौ—प्रमुख; इति—इस प्रकार; संहत—बद्ध; अञ्जलिः—हाथ जोड़े।

यह देखकर कि ये असाधारण पुरुष भगवान् के प्रत्यक्ष दास हैं, ध्रुव महाराज तुरन्त उठ खड़े हुए। किन्तु हड़बड़ाहट में जल्दी के कारण वे उचित रीति से उनका स्वागत करना भूल गये। अतः उन्होंने हाथ जोड़ कर केवल नमस्कार किया और वे भगवान् के पवित्र नामों की महिमा का जप करने लगे।

तात्पर्य : भगवान् के पवित्र नाम का जप हर तरह से सम्पूर्ण होता है। जब ध्रुव महाराज ने चार भुजाओं वाले तथा सुवेश वाले विष्णु दूतों को देखा, तो वे जान गये कि ये कौन थे, किन्तु कुछ समय के लिए वे चकरा गये। किन्तु फिर भगवान् के पवित्र नाम अर्थात् हरे कृष्ण मंत्र का जप करके वे अकस्मात् प्रकट होनेवाले असामान्य अतिथियों को प्रसन्न कर सके। भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन सम्पूर्ण होता है। यद्यपि विष्णु को या उनके पार्षदों को प्रसन्न करने की विधि किसी को ज्ञात नहीं, फिर भी यदि निष्ठापूर्वक केवल उनके नाम का जप किया जाय तो सब कुछ ठीक हो जाता है। अतः भक्त, चाहे संकट में हो अथवा सुख में, हरे कृष्ण मंत्र का निरन्तर जप करता है। जब वह संकट में होता है,

तो तुरन्त उससे छूट जाता है और जब वह भगवान् विष्णु या उनके पार्षदों का दर्शन करने की स्थिति में होता है, तो वह भगवान् को महामंत्र के जाप द्वारा प्रसन्न कर सकता है। महामंत्र की यह परम प्रकृति है। संकट तथा सुख दोनों की दशा में इसे बिना रोक-टोक के जपा जा सकता है।

तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं

बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरम् ।

सुनन्दनन्दावुपसृत्य सस्मितं

प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसम्मतौ ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; कृष्ण—भगवान् कृष्ण के; पाद—चरण कमलों का; अभिनिविष्ट—विचार में लीन; चेतसम्—जिसका हृदय; बद्ध-अञ्जलिम्—हाथ जोड़े; प्रश्रय—विनीत भाव से; म्र—झुका हुआ; कन्धरम्—जिसकी गर्दन; सुनन्द—सुनन्द; नन्दौ—तथा नन्द; उपसृत्य—पास आकर; स-स्मितम्—हँसते हुए; प्रत्यूचतुः—सम्बोधित किया; पुष्कर-नाभ—विष्णु का, जिनके कमलनाभि है; सम्मतौ—निजी दास।

ध्रुव महाराज भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमलों के चिन्तन में सदैव लीन रहते थे। उनका हृदय कृष्ण से पूरित था। जब परमेश्वर के दो निजी दास, जिनके नाम सुनन्द तथा नन्द थे, प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए उनके पास पहुँचे तो ध्रुव महाराज हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक सिर नीचा किये खड़े हो गये। तब उन्होंने ध्रुव महाराज को इस प्रकार से सम्बोधित किया।

तात्पर्य : इस श्लोक में पुष्करनाभसम्मतौ शब्द महत्त्वपूर्ण है। श्रीकृष्ण अथवा भगवान् विष्णु अपने कमलनेत्रों, कमलनाभि, कमलचरण तथा कमलकरपल्लवों के लिए विख्यात हैं। यहाँ पर उन्हें पुष्करनाभ अर्थात् “कमलनाभ” कहा गया है तथा सम्मतौ का अर्थ है, “दो अत्यन्त आज्ञाकारी दास।” भौतिक जीवन प्रणाली आध्यात्मिक जीवन प्रणाली से इस बात में भिन्न है कि पहली प्रणाली तो परमेश्वर की अवज्ञा है और दूसरी आज्ञाकरिता। सभी जीवात्माएँ भगवान् के भिन्नांश हैं और वे सदैव भगवान् की आज्ञा का पालन करनेवाली हैं। यही पूर्ण एकात्मकता है।

वैकुण्ठलोक में सभी जीवात्माओं की भगवान् के साथ एकात्मता बनी रहती है क्योंकि वे कभी भी उनके आदेशों का उल्लंघन नहीं करते हैं। किन्तु भौतिक जगत में वे सम्मत अर्थात् अनुकूल नहीं होते, वे सदैव असम्मत अर्थात् प्रतिकूल रहते हैं। यह मानव जीवन भगवान् के आदेशों के अनुकूल बनाये जाने की शिक्षा दिए जाने का एक अवसर है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन समाज में यह शिक्षा प्रदान

करने के लिए ही है। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, भौतिक प्रकृति के नियम अत्यन्त कठोर हैं; कोई भी प्रकृति के अकाट्य नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता। किन्तु जो मनुष्य शरणागत होकर परमेश्वर के आदेश का पालन करता है, वह सरलता से इन कठोर नियमों को आसानी से लाँघ लेता है। ध्रुव महाराज का उदाहरण अत्यन्त उपयुक्त है। भगवान् के आदेशों के प्रति सम्मत होकर तथा उनके प्रति प्रेम उत्पन्न करके ही ध्रुव को विष्णु के विश्वस्त दासों के प्रत्यक्ष दर्शन पाने का अवसर प्राप्त हो सका। जो ध्रुव के लिए सम्भव था, वह सबके लिए सम्भव हो सकता है। जो कोई भी गम्भीरता से भक्ति में लग जाता है, वही समय आने पर वैसी ही जीवन-सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

सुनन्दनन्दावूचतुः

भो भो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु ।
यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सुनन्द-नन्दौ ऊचतुः—सुनन्द तथा नन्द ने कहा; भो: भो: राजन्—हे राजा; सु-भद्रम्—कल्याण हो; ते—तुम्हारा; वाचम्—शब्द; नः—हमारे; अवहितः—ध्यानपूर्वक; शृणु—सुनो; यः—जो; पञ्च-वर्षः—पाँच वर्ष के; तपसा—तपस्या द्वारा; भवान्—आप; देवम्—भगवान्; अतीतृपत्—अत्यधिक प्रसन्न।

विष्णु के दोनों विश्वस्त पार्षद सुनन्द तथा नन्द ने कहा : हे राजन्, आपका कल्याण हो। हम जो कहें, कृपया उसे ध्यानपूर्वक सुनें। जब आप पाँच वर्ष के थे तो आपने कठिन तपस्या की थी और उससे आपने पुरुषोत्तम भगवान् को अत्यधिक प्रसन्न कर लिया था।

तात्पर्य : जो ध्रुव महाराज ने किया था, वह सबों के लिए सम्भव है। किसी भी पाँच वर्ष के बालक को शिक्षित किया जा सकता है और कुछ ही काल में उसे कृष्णचेतना का बोध हो सकता है और उस का जीवन सफल हो सकता है। दुर्भाग्यवश ऐसी शिक्षा का विश्व-भर में अभाव है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अग्रणी पुरुषों का कर्तव्य है कि वे विश्व के विभिन्न भागों में बच्चों के प्रशिक्षण संस्थान खोलें जिनमें पाँच साल के बच्चे भर्ती हों। इस प्रकार ऐसे बालक न तो हिप्पी बनेंगे, न समाज के बिगड़े बालक रहेंगे; अपितु वे भगवद्भक्त हो जाएँगे। तब विश्व का मुखड़ा स्वतः बदला दिखेगा।

तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ।
पार्षदाविह सम्प्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; अखिल—सम्पूर्ण; जगत्—ब्रह्माण्ड; धातुः—स्रष्टा; आवाम्—हम दोनों; देवस्य—भगवान् के; शार्ङ्गिणः—शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले; पार्षदी—पार्षद; इह—अब; सम्प्राप्तौ—पास आये हैं; नेतुम्—ले जाने के लिए; त्वाम्—तुमको; भगवत्-पदम्—भगवान् के स्थान तक ।

हम उन भगवान् के प्रतिनिधि हैं, जो समग्र ब्रह्माण्ड का स्रष्टा हैं और हाथ में शार्ङ्ग नामक धनुष को धारण किये रहते हैं । आपको वैकुण्ठलोक ले जाने के लिए हमें विशेष रूप से नियुक्त किया गया है ।

तात्पर्य : भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि उनकी दिव्य लीलाओं को (चाहे इस भौतिक संसार में या आध्यात्मिक संसार में) जानकर कोई भी व्यक्ति, जो यह जानता है कि मैं कौन हूँ, किस प्रकार प्रकट होता हूँ और किस प्रकार कर्म करता हूँ, तुरन्त ही वैकुण्ठलोक जाने का भागी बन सकता है । ध्रुव पर भगवद्गीता का यह नियम लागू होता है । उन्होंने तपस्या द्वारा आजीवन भगवान् को समझने का प्रयास किया । अब इसका परिपक्व फल यह मिला कि वे भगवान् के विश्वस्त पार्षदों के साथ वैकुण्ठलोक जाने के योग्य हो गए ।

सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया
यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ।
आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो
ग्रहर्क्षताराः परियन्ति दक्षिणम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

सुदुर्जयम्—प्राप्त करना कठिन; विष्णु-पदम्—विष्णुलोक; जितम्—जीता गया; त्वया—तुम्हारे द्वारा; यत्—जो; सूरयः—बड़े-बड़े देवता; अप्राप्य—बिना प्राप्त किये; विचक्षते—केवल देखते हैं; परम्—परम; आतिष्ठ—आइये; तत्—उस; चन्द्र—चन्द्रमा; दिव-आकर—सूर्य; आदयः—इत्यादि; ग्रह—नौ ग्रह (बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल बृहस्पति, शनि, युरेनस, नेपचून तथा प्लुटो); ऋक्ष-ताराः—नक्षत्र; परियन्ति—परिक्रमा करते हैं; दक्षिणम्—दाईं ओर ।

विष्णुलोक को प्राप्त कर पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु आपने अपनी तपस्या से उसे जीत लिया है । बड़े-बड़े ऋषि तथा देवता भी इस पद को प्राप्त नहीं कर पाते । परमधाम (विष्णुलोक) के दर्शन करने के लिए ही सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रह, तारे, चन्द्र-भुवन (नक्षत्र) तथा सौर-मण्डल उसकी परिक्रमा करते हैं । कृपया आइये, वहाँ जाने के लिए आपका स्वागत है ।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में भी तथाकथित वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा चिन्तक वैकुण्ठ तक जाने के लिए प्रयत्नशील हैं, किन्तु वे वहाँ कभी नहीं जा सकते। किन्तु भक्ति करते हुए भक्त न केवल वैकुण्ठलोक को जान पाता है, वरन् यथार्थ में वहाँ जाकर आनन्द तथा ज्ञान का शाश्वत जीवन बिताता है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन इतना शक्तिमान है कि जीवन के नियमों का पालन करते हुए तथा भगवत्प्रेम उत्पन्न करके कोई भी भगवान् के धाम आसानी से वापस जा सकता है। इसके साक्षात् प्रमाण ध्रुव महाराज हैं। जहाँ विज्ञानीजन तथा दार्शनिक चन्द्रमा में जाकर वहाँ रुकने तथा रहने के प्रयासों में असफल रहते हैं, वहीं भक्त अन्य लोकों की यात्रा सुगमता से कर सकता है और अन्त में भगवान् के धाम जाता है। भक्तों को अन्य लोकों को देखने में रुचि नहीं रहती, किन्तु भगवान् के धाम जाते हुए वे इन समस्त लोकों को देखते हुए पार करते हैं जिस प्रकार कि दूर जानेवाला यात्री अनेक छोटे-छोटे स्टेशनों को पार करता जाता है।

अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यङ्ग कर्हिचित् ।
आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अनास्थितम्—कभी भी प्राप्त नहीं हुआ; ते—तुम्हारे; पितृभिः—पूर्वजों द्वारा; अन्यैः—अन्यों के द्वारा; अपि—भी; अङ्ग—हे ध्रुव; कर्हिचित्—कभी भी; आतिष्ठ—आकर रहिये; जगताम्—ब्रह्माण्ड के वासियों द्वारा; वन्द्यम्—पूज्य; तत्—वह; विष्णोः—विष्णु का; परमम्—परम; पदम्—पद, स्थान।

हे राजा ध्रुव, आज तक न तो आपके पूर्वजों ने, न अन्य किसी ने ऐसा दिव्य लोक प्राप्त किया है। यह विष्णुलोक, जहाँ विष्णु निवास करते हैं, सबों से ऊपर है। यह अन्य सभी इस ब्रह्माण्डों के निवासियों द्वारा पूजित है। आप हमारे साथ आयें और वहाँ शाश्वत वास करें।

तात्पर्य : जब ध्रुव महाराज तपस्या करने गये थे तो वे ऐसा पद प्राप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे, जिसकी कल्पना उनके पूर्वजों को स्वप्न में भी न हुई हो। उनके पिता उत्तानपाद थे, पितामह मनु और प्रपितामह ब्रह्मा थे। अतः वे ब्रह्मा द्वारा प्राप्य पद से भी बड़ा पद चाह रहे थे और उन्होंने नारद से ऐसा पद प्राप्त करने की सुविधा मांगी थी। अतः विष्णु के पार्षदों ने स्मरण दिलाया कि विष्णु जिस लोक में वास करते हैं उसे न तो उनके पूर्वज और न ब्रह्माण्ड का कोई भी वासी प्राप्त कर सका है। इसका एकमात्र कारण यही है कि इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति या तो कर्मी या ज्ञानी अथवा योगी ही हैं, शुद्ध

भक्त तो शायद ही कोई होगा। विष्णुलोक नामक दिव्यलोक तो विशेष रूप से भक्तों के लिए है; ज्ञानियों, कर्मियों या योगियों के लिए नहीं। बड़े-बड़े ऋषि अथवा देवता ब्रह्मलोक तक नहीं पहुँच पाते हैं और जैसाकि *भगवद्गीता* में उल्लेख है ब्रह्मलोक स्थायी वास नहीं है। ब्रह्मा का जीवनकाल इतना दीर्घ है कि उनके एक दिन का भी अनुमान लगा पाना कठिन है, तो भी ब्रह्मा भी मरते हैं और उसी तरह उनके लोक के वासी भी। *भगवद्गीता* (८.१६) में कहा गया है—*आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन*—जो लोग विष्णुलोक को जाते हैं, उनके अतिरिक्त सभी जीवन के चार नियमों—जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग—द्वारा अनुशासित होते हैं। *गीता* में (१५.६) भगवान् का कथन है—*यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्भाम् परमं मम*—वह लोक, जहाँ एक बार जाकर लौटना नहीं होता वह मेरा परम धाम है। ध्रुव महाराज को स्मरण कराया गया, “आप हमारे साथ उस लोक को जा रहे हैं जहाँ से लौटकर कोई फिर इस लोक में नहीं आता।” भौतिक विज्ञानी चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों तक जाने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु वे सर्वोच्च ग्रह, ब्रह्मलोक तक जाने की कल्पना नहीं कर सकते, क्योंकि वह उनकी कल्पना से परे है। भौतिक गणना से यदि कोई प्रकाश की गति से यात्रा करे तो सर्वोच्च ग्रह तक पहुँचने में चालीस हजार प्रकाशवर्ष लगेंगे। यांत्रिक विधियों से ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च ग्रह तक पहुँचना दुष्कर है, किन्तु भक्तियोग द्वारा, जिसे महाराज ध्रुव ने अपनाया था, कोई भी मनुष्य इस ब्रह्माण्ड के अन्य किसी ग्रह तक ही नहीं, वरन् इस ब्रह्माण्ड से परे विष्णुलोक को जा सकता है। हमने इसकी रूपरेखा अपनी पुस्तिका *अन्य ग्रहों की सुगम यात्रा* में प्रस्तुत की है।

एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना ।

उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

एतत्—वह; विमान—विमान; प्रवरम्—अद्वितीय; उत्तमश्लोक—भगवान्; मौलिना—समस्त जीवात्माओं में शिरोमणि; उपस्थापितम्—भेजा है; आयुष्मन्—हे दीर्घजीवी; अधिरोढुम्—चढ़ने के लिए; त्वम्—तुम; अर्हसि—योग्य हो।

हे दीर्घजीवी, इस अद्वितीय विमान को उन भगवान् ने भेजा है, जिनकी स्तुति उत्तम श्लोकों द्वारा की जाती है और जो समस्त जीवात्माओं के प्रमुख हैं। आप इस विमान में चढ़ने के सर्वथा योग्य हैं।

तात्पर्य : ज्योतिष गणना के अनुसार ध्रुवतारा के साथ ही शिशुमार नामक एक अन्य तारा है, जहाँ संसार के पालनकर्ता विष्णु भगवान् वास करते हैं। शिशुमार अथवा ध्रुवलोक तक वैष्णवों के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जा सकता। जैसाकि आगे आने वाले श्लोकों में वर्णन किया जाएगा। ध्रुव महाराज के लिए विष्णु के पार्षद विशेष विमान लाये थे और उन्हें बताया कि भगवान् विष्णु ने यह विशेष विमान भेजा है।

वैकुण्ठ का यह विमान यंत्रों से नहीं चलता। अन्तरिक्ष में यात्रा करने की तीन विधियाँ हैं। इनमें से एक का पता आधुनिक विज्ञानियों को है। यह कपोत-वायु कहलाती है। क का अर्थ है, “अन्तरिक्ष” और कपोत का अर्थ है “यान।” दूसरी विधि भी कपोत-वायु है, जिसमें कपोत कबूतर का सूचक है। मनुष्य कबूतरों को प्रशिक्षित करके अन्तरिक्ष में जा सकता है। किन्तु तीसरी विधि अत्यन्त सूक्ष्म है। यह आकाश-पतन कहलाती है। यह विधि भौतिक भी है। जिस प्रकार मन बिना किसी यांत्रिक व्यवस्था के जहाँ चाहे घूम सकता है उसी प्रकार आकाशपतन विमान भी मन के वेग से उड़ सकता है। इस आकाश-पतन प्रणाली के परे वैकुण्ठ-विधि है, जो नितान्त आध्यात्मिक है। विष्णु ने ध्रुव महाराज को शिशुमार लाने के लिए जो विमान भेजा था वह पूर्ण रूप से आध्यात्मिक दिव्य विमान था। भौतिक विज्ञानी न तो ऐसे यान को देख सकते हैं और न कल्पना कर सकते हैं कि वह वायु में कैसे उड़ता है। यद्यपि भगवद्गीता में इसका उल्लेख है (परस्तस्मात् भावोऽन्यः) किन्तु भौतिक विज्ञानी को वैकुण्ठ (दिव्य आकाश) का कोई ज्ञान नहीं है।

मैत्रेय उवाच

निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययो-

र्मधुच्युतं वाचमुरुक्रमप्रियः ।

कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलो

मुनीन्प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; निशम्य—सुनकर; वैकुण्ठ—भगवान् के; नियोज्य—पार्षद; मुख्ययोः—प्रधान के; मधु-च्युतम्—मधु ढालनेवाले, अमृतमय; वाचम्—वचन; उरुक्रम-प्रियः—भगवान् के प्रिय, ध्रुव महाराज; कृत-अभिषेकः—स्नान करके; कृत—निवृत्त; नित्य-मङ्गलः—अपने नैतिक कर्म; मुनीन्—मुनियों को; प्रणम्य—नमस्कार करके; आशिषम्—आशीर्वाद; अभ्यवादयत्—स्वीकार किया।

महर्षि मैत्रेय ने आगे कहा : ध्रुव महाराज भगवान् के अत्यन्त प्रिय थे। जब उन्होंने

वैकुण्ठलोक वासी भगवान् के मुख्य पार्षदों की मधुरवाणी सुनी तो उन्होंने तुरन्त स्नान किया, अपने को उपयुक्त आभूषणों से अलंकृत किया और अपने नित्य आध्यात्मिक कर्म सम्पन्न किए। तत्पश्चात् उन्होंने वहाँ पर उपस्थित ऋषियों को प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद ग्रहण किया।

तात्पर्य : हमें यह ध्यान देना चाहिए कि इस जगत को छोड़ने के समय भी ध्रुव महाराज अपनी भक्ति के प्रति कितने निष्ठावान थे। वे भक्ति के कार्यों करने में निरन्तर सतर्क रहते थे। प्रत्येक भक्त को प्रातःकाल स्नान करके शरीर में तिलक धारण करना चाहिए। कलियुग में स्वर्ण या रत्नाभूषण प्राप्त कर सकना कठिन है, किन्तु शरीर भर में बारह तिलक चिह्न लगा लिए जाँय तो शरीर को पवित्र करने के लिए यह शुभ अलंकरण पर्याप्त होगा। चूँकि ध्रुव महाराज उस समय बदरिकाश्रम में रह रहे थे, अतः वहाँ पर अनेक साधु भी थे। जब विमान आया तो ध्रुव महाराज गर्वित नहीं हुए, वरन् विनीत वैष्णव की भाँति मुनियों का आशीर्वाद प्राप्त करके ही विमान पर आरूढ़ हुए।

परीत्याभ्यर्च्य धिष्यच्छयं पार्षदावभिवन्द्य च ।

इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

परीत्य—प्रदक्षिणा करके; अभ्यर्च्य—पूजा करके; धिष्य-अछयम्—दिव्य विमान; पार्षदौ—दोनों पार्षदों को; अभिवन्द्य—नमस्कार करके; च—भी; इयेष—प्रयत्न करने लगे; तत्—उस यान; अधिष्ठातुम्—चढ़ने के लिए; बिभ्रत्—देदीप्यमान; रूपम्—अपना स्वरूप; हिरण्मयम्—सुनहला।

चढ़ने के पूर्व ध्रुव महाराज ने विमान की पूजा की, उसकी प्रदक्षिणा की और विष्णु के पार्षदों को भी नमस्कार किया। इसी दौरान वे पिघले सोने के समान तेजमय तथा देदीप्यमान हो उठे। इस प्रकार से वे उस दिव्ययान में चढ़ने के लिए पूर्णतः सन्नद्ध थे।

तात्पर्य : परम जगत में यान, विष्णु के पार्षद तथा विष्णु स्वयं—ये सभी दिव्य (आध्यात्मिक) हैं। इनमें किसी प्रकार का भौतिक कल्मष नहीं है। गुण में भी वहाँ सभी वस्तुएँ एक हैं। जिस प्रकार विष्णु पूज्य हैं, वैसे ही उनके पार्षद, उनकी सामग्री, उनका विमान तथा उनका धाम भी है, क्योंकि विष्णु की सभी वस्तुएँ भगवान् विष्णु के ही समान हैं। परम वैष्णव होने के नाते ध्रुव महाराज को यह सब ज्ञात था, अतः उन्होंने चढ़ने के पूर्व पार्षदों तथा विमान को भी प्रणाम किया। किन्तु इसी दौरान उनके शरीर ने आत्मस्वरूप धारण कर लिया, अतः वह पिघले सोने के समान जगमगा रहा था। इस प्रकार वे भी

विष्णुलोक की अन्य सामग्रियों के समान हो गये।

मायावादी चिन्तक सोच नहीं पाते कि विभिन्न विषमताओं में यह एकत्व कैसे प्राप्त किया जा सकता है। उनके एकत्व का भाव यह है कि कोई भी विभिन्नता नहीं होती, अतः वे निर्गुणवादी हो गए हैं। चूँकि शिशुमार, विष्णुलोक अथवा ध्रुव लोक इस जगत से सर्वथा भिन्न हैं, अतः विष्णु मन्दिर भी इस भौतिक जगत से सर्वथा भिन्न होता है। जब हम मन्दिर में हों तो हमें यह समझना होगा कि हम भौतिक जगत से सर्वथा पृथक् स्थित हैं। मन्दिर में विष्णु जी, उनका आसन, उनका कक्ष तथा मन्दिर से सम्बन्धित अन्य सामग्रियाँ दिव्य होती हैं। इस मन्दिर में सत्त्व, रजो तथा तमो गुणों का प्रवेश नहीं होता। अतः कहा गया है कि जंगल का वास सतोगुणी है, नगर वास रजोगुणी और वेश्यालय, मदिरालय या बूचड़खाने का वास तमोगुणी है। किन्तु मन्दिर का वास तो विष्णुलोक का वास है। मन्दिर की प्रत्येक वस्तु विष्णु या कृष्ण के ही समान पूजनीय है।

तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् ।

मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तदा—तब; उत्तानपदः—राजा उत्तानपाद के; पुत्रः—पुत्र ने; ददर्श—देखा; अन्तकम्—साक्षात् मृत्यु को; आगतम्—आया हुआ; मृत्योः मूर्ध्नि—मृत्यु के सिर पर; पदम्—पाँव; दत्त्वा—रखकर; आरुरोह—चढ़ गये; अद्भुतम्—आश्चर्यमय; गृहम्—विमान में जो भवन के तुल्य था।

जब ध्रुव महाराज उस दिव्य विमान में चढ़ने जा रहे थे तो उन्होंने साक्षात् काल (मृत्यु) को अपने निकट आते देखा। किन्तु उन्होंने मृत्यु की परवाह नहीं की; उन्होंने इस अवसर का लाभ उठाकर काल के सिर पर अपने पाँव रख दिये और वे विमान में चढ़ गये जो इतना विशाल था कि जैसे एक भवन हो।

तात्पर्य : एक भक्त तथा एक अभक्त के देहान्त को एक-जैसा समझ लेना सर्वथा भ्रामक है। जब ध्रुव महाराज उस दिव्य विमान में चढ़ रहे थे तो उन्होंने एकाएक मृत्यु को अपने पास आते देखा, किन्तु वे भयभीत नहीं हुए। मृत्यु हुआ उन्हें कष्ट दिये जाने के बदले उन्होंने मृत्यु की उपस्थिति का लाभ उठाया और उसके सिर पर अपने पाँव रख दिये। अल्पज्ञानी लोग भक्त तथा अभक्त की मृत्यु के अन्तर को नहीं जानते। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण प्रासंगिक होगा। बिल्ली मुँह से अपने बच्चे भी पकड़ती

है और चूहों को भी। ऊपर से बच्चों तथा चूहों का पकड़ा जाना एक-जैसा लगता है, किन्तु ऐसा है नहीं। चूहे के मुँह से पकड़े जाने का अर्थ है उसकी मृत्यु, किन्तु बच्चे का पकड़ा जाना बच्चे के लिए सुखकर होता है। जब ध्रुव महाराज विमान में चढ़ने लगे तो उन्होंने नमस्कार करने के लिए आई हुई मृत्यु का लाभ उठाया, वे उसके सिर पर पाँव रखकर उस अनुपम विमान में, जो एक विशाल गृह की भाँति था, चढ़ गये।

भागवत में ऐसे अन्य उदाहरण भी प्राप्त हैं। कहा जाता है कि जब कर्दम मुनि ने अपनी पत्नी देवहूति को समस्त ब्रह्माण्ड में घुमाने के लिए विमान की रचना की तो वह एक बड़े नगर-जैसा था जिसमें अनेक घर, सरोवर तथा उद्यान समाहित थे। आधुनिक विज्ञानियों ने बड़े-बड़े वायुयान बनाये हैं, किन्तु उनमें यात्री खचाखच भरे रहते हैं जिससे उन्हें सभी तरह की असुविधाएँ होती हैं।

भौतिक विज्ञानी विमान के निर्माण में भी पूरी तरह दक्ष नहीं हैं। कर्दम मुनि के विमान अथवा वैकुण्ठलोक से आये हुए विमान की बराबरी में उन्हें ऐसा विमान बनाना चाहिए जो एक विशाल नगर की भाँति सभी सुविधाओं से—यथा सरोवर, उद्यान, पार्क इत्यादि से—लैस हो। उनके विमान को अन्तरिक्ष में उड़ सकने में तथा अन्य लोकों की सैर कर सकने में सक्षम होना चाहिए। यदि वे ऐसा विमान बना सकें तो उन्हें अन्तरिक्ष में उड़ान भरते समय ईंधन के लिए अन्तरिक्ष में विभिन्न स्टेशन स्थापित करने की आवश्यकता न रहेगी। ऐसे विमान में अनन्त ईंधन होगा अथवा विष्णुलोक से आये विमान की तरह वह बिना ईंधन के उड़ सकेगा।

तदा दुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवादयः ।

गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; दुन्दुभयः—दुन्दुभी; नेदुः—बजने लगे; मृदङ्ग—मृदंग; पणव—ढोल; आदयः—इत्यादि.; गन्धर्व-मुख्याः—गन्धर्वलोक के मुख्य निवासी; प्रजगुः—गाने लगे; पेतुः—वर्षा की; कुसुम—फूल; वृष्टयः—वर्षा की तरह।

उस समय ढोल, मृदंग तथा दुन्दुभी के शब्द आकाश से गूँजने लगे, प्रमुख-प्रमुख गन्धर्व जन गाने लगे और अन्य देवताओं ने ध्रुव महाराज पर फूलों की मूसलाधार वर्षा की।

स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन्सुनीतिं जननीं ध्रुवः ।

अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; च—भी; स्वः—लोकम्—दैव लोक को; आरोक्ष्यन्—चढ़ते समय; सुनीतिम्—सुनीति को; जननीम्—माता; ध्रुवः—ध्रुव महाराज ने; अन्वस्मरत्—स्मरण किया; अगम्—प्राप्त करना कठिन; हित्वा—पीछे छोड़ कर; दीनाम्—बेचारी; यास्ये—मैं जाऊँगा; त्रि-विष्टपम्—वैकुण्ठलोक को।

ध्रुव महाराज जब उस दिव्य विमान पर बैठे थे, जो चलनेवाला था, तो उन्हें अपनी बेचारी माता सुनीति का स्मरण हो आया। वे सोचने लगे, “मैं अपनी बेचारी माता को छोड़ कर वैकुण्ठलोक अकेले कैसे जा सकूँगा?”

तात्पर्य : ध्रुव महाराज अपनी माता सुनीति के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता का अनुभव कर रहे थे। उन्हीं के मार्गदर्शन पर वे स्वयं विष्णु के पार्षदों द्वारा वैकुण्ठलोक ले जाये जाने में समर्थ हो पाये। अब उन्हें माता की याद आ रही थी और वे उन्हें भी साथ ले जाना चाहते थे। वस्तुतः ध्रुव महाराज की माता सुनीति ही उनकी पथ-प्रदर्शक गुरु थीं। ऐसा गुरु कभी-कभी शिक्षा-गुरु कहलाता है। यद्यपि नारद मुनि उनके दीक्षा-गुरु थे, किन्तु उनकी माता सुनीति ने ही भगवान् की कृपा प्राप्त करने की विधि की शिक्षा दी थी। शिक्षा-गुरु या दीक्षा-गुरु का कर्तव्य है कि वह शिष्य को सही-सही शिक्षा दे और उसको कार्यान्वित करना शिष्य पर निर्भर करता है। शास्त्रीय आदेशों के अनुसार शिक्षा-गुरु तथा दीक्षा-गुरु में कोई अन्तर नहीं है। सामान्यतः शिक्षा-गुरु ही बाद में दीक्षा-गुरु बनता है। किन्तु स्त्री होने के कारण विशेष रूप से माता होने के कारण, सुनीति अपने पुत्र महाराज ध्रुव की दीक्षा-गुरु नहीं हो सकती थीं। तो भी वे सुनीति के प्रति कम कृतज्ञ न थे। नारद मुनि को विष्णुलोक ले जाने का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु ध्रुव महाराज ने अपनी माता को ले जाने के लिए सोचा।

जो कुछ भगवान् की योजना होती है, वह तुरन्त फलवती होती है। इसी प्रकार जो भक्त परमेश्वर पर पूर्णतः आश्रित है, वह भगवत्कृपा से अपनी सारी इच्छाएँ पूरी कर सकता है। भगवान् अपनी इच्छाओं की पूर्ति स्वतंत्र रूप से करते हैं, किन्तु भक्त को भगवान् पर निर्भर रह कर अपनी इच्छाएँ पूरी करनी पड़ती है। अतः ज्योंही ध्रुव महाराज ने अपनी बेचारी माता के विषय में सोचा, तो विष्णु के पार्षदों ने विश्वास दिलाया कि सुनीति भी दूसरे विमान से विष्णुलोक को चल रही हैं। ध्रुव महाराज ने सोचा था कि वे अपनी माँ को छोड़ कर अकेले ही वैकुण्ठलोक जा रहे हैं। यह अच्छा नहीं था,

क्योंकि तब लोग आलोचना करेंगे कि वे अपनी माता को साथ नहीं ले गये, जिसने उनके लिए इतना किया। किन्तु ध्रुव ने यह भी विचार किया कि वे व्यक्तिगत रूप से परमेश्वर नहीं थे, अतः जब श्रीकृष्ण उनकी इच्छाओं को पूरा करेंगे, तभी यह सम्भव हो सकेगा। कृष्ण ने तुरन्त उनका मनोभाव जान लिया, अतः उन्होंने ध्रुव को बता दिया कि उनकी माता भी उनके साथ ही चल रही हैं। यह घटना सिद्ध करती है कि ध्रुव महाराज जैसे भक्त की समस्त इच्छाएँ पूरी होती हैं; भगवत्कृपा से वह भगवान् के ही समान हो जाता है और जब भी वह किसी वस्तु के लिए सोचता है, तो उसकी इच्छा तुरन्त पूर्ण हो जाती है।

इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ ।
दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; व्यवसितम्—चिन्तन; तस्य—ध्रुव का; व्यवसाय—ज्ञान; सुर-उत्तमौ—दो प्रमुख पार्षद; दर्शयाम् आसतुः—(उसको) दिखाया; देवीम्—पूज्या सुनीति; पुरः—समक्ष; यानेन—विमान से; गच्छतीम्—आगे जाती हुई।

वैकुण्ठलोक के महान् पार्षद नन्द तथा सुनन्द ध्रुव महाराज के मन की बात जान गये, अतः उन्होंने उन्हें दिखाया कि उनकी माता सुनीति दूसरे यान में आगे-आगे जा रही हैं।

तात्पर्य : यह घटना सिद्ध करती है कि जिस शिक्षा या दीक्षा-गुरु के ध्रुव महाराज जैसा शिष्य हो, जो इतनी दृढ़ता से भक्ति करे, तो उसे शिष्य अपने साथ ले जाता है भले ही गुरु उतना बड़ा चढ़ा न हो। यद्यपि सुनीति ध्रुव महाराज को उपदेश देनेवाली थीं, किन्तु स्त्री होने के कारण वे न तो जंगल जा सकीं, न ध्रुव महाराज के समान तपस्या कर सकीं। तो भी ध्रुव महाराज अपनी माता को अपने साथ ले जाने में समर्थ हो सके। इसी प्रकार प्रह्लाद महाराज ने भी अपने नास्तिक पिता हिरण्यकशिपु का उद्धार किया। इससे यह निष्कर्ष निकला कि यदि शिष्य अथवा सन्तान अत्यधिक प्रबल भक्त हो तो वह अपने पिता-माता अथवा शिक्षा या दीक्षा-गुरु को अपने साथ वैकुण्ठलोक ले जा सकता है। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहा करते थे, “यदि मैं एक भी जीव को भगवान् के धाम पहुँचा सका तो मैं समझूँगा कि मेरा उद्देश्य—कृष्णभावनामृत का प्रसार—सफल हुआ।” अब कृष्णभावनामृत आन्दोलन विश्व भर में फैल रहा है और कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि यद्यपि मैं अनेक मामलों में पंगु हूँ, किन्तु यदि मेरा एक भी शिष्य ध्रुव महाराज के समान शक्तिशाली हो जाये तो वह अपने साथ मुझे भी

वैकुण्ठलोक ले जाने में समर्थ हो सकता है।

तत्र तत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः ।

अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तत्र तत्र—जहाँ-तहाँ; प्रशंसद्भिः—ध्रुव महाराज के प्रशंसकों द्वारा; पथि—रास्ते में; वैमानिकैः—विभिन्न प्रकार के यानों द्वारा ले जाये जानेवाले; सुरैः—देवताओं द्वारा; अवकीर्यमाणः—बिखेरा जाकर; ददृशे—देख सके; कुसुमैः—फूलों से; क्रमशः—एक के पश्चात् एक; ग्रहान्—सौर मण्डल के समस्त ग्रह।

आकाश-मार्ग से जाते हुए ध्रुव महाराज ने क्रमशः सौर मण्डल के सभी ग्रहों को देखा और रास्ते में समस्त देवताओं को उनके विमानों में से अपने ऊपर फूलों की वर्षा करते देखा।

तात्पर्य : एक वैदिक उक्ति है—*यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेव विज्ञातं भवति*—अर्थात् भगवान् को जान लेने पर भक्त को सब कुछ ज्ञात हो जाता है। इसी प्रकार भगवान् के लोक जाने से मनुष्य को वैकुण्ठलोक के मार्ग में पड़नेवाले अन्य सभी लोकों का ज्ञान हो जाता है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि ध्रुव महाराज का शरीर हमसे भिन्न था। वैकुण्ठ-विमान में चढ़ते समय उनका शरीर दिव्य सुनहरे रंग का हो गया था। कोई भी व्यक्ति भौतिक देह से उच्च लोकों को पार नहीं कर सकता, किन्तु जब उसे दिव्य-देह प्राप्त हो जाती है, तो वह न केवल इस जगत के उच्चतर लोकों को पार कर सकता है, वरन् इनसे परे उच्च लोक, वैकुण्ठलोक तक भी जा सकता है। यह सुविदित है कि नारद मुनिवैकुण्ठ तथा भौतिक जगत दोनों में सर्वत्र—विचरते रहते हैं।

यह भी ध्यान देने की बात है कि वैकुण्ठलोक जाते समय सुनीति का भी शरीर दिव्य-रूप हो गया था। सुनीति की भाँति ही प्रत्येक माता को चाहिए कि वह अपनी सन्तान को ध्रुव महाराज के समान भक्त बनने की शिक्षा दे। जब ध्रुव पाँच वर्ष के थे तभी सुनीति ने उन्हें शिक्षा दी कि इस संसार से विरक्त होकर भगवान् की खोज करने जंगल में जाओ। वह कभी नहीं चाहती थीं कि उनका पुत्र भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए तप किये बिना घर में ही सुख से रहे। हर माता को सुनीति की ही तरह अपने पुत्र की का पालन करना चाहिए और पाँच वर्ष की आयु से ही ब्रह्मचारी बनने तथा आत्म-साक्षात्कार के लिए तपस्या करने की शिक्षा देनी चाहिए। इससे यह लाभ होगा कि यदि पुत्र ध्रुव के समान भक्त हुआ तो न केवल वह भगवान् के धाम को जाएगा, वरन् उसकी माता भी उसी के साथ

वैकुण्ठलोक को जा सकेगी, भले ही वह भक्ति के लिए तपस्या करने में असमर्थ रही हो।

त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि ।

परस्ताद्यद्ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

त्रि-लोकीम्—तीनों लोक; देव-यानेन—दिव्य विमान से; सः—ध्रुव; अतिव्रज्य—पार करके; मुनीन्—मुनिगण; अपि—भी; परस्तात्—परे; यत्—जो; ध्रुव-गतिः—ध्रुव जिन्होंने अविचल जीवन प्राप्त किया; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; पदम्—धाम; अथ—तब; अभ्यगात्—प्राप्त किया।

इस प्रकार ध्रुव महाराज ने सप्तर्षि कहलानेवाले ऋषियों के सात लोकों को पार किया। इसके परे उन्होंने उस लोक में अविचल दिव्य पद प्राप्त किया जहाँ भगवान् विष्णु वास करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु के दो प्रमुख पार्षद, जिनके नाम सुनन्द तथा नन्द थे, विमान को चला रहे थे। ऐसे ही दिव्य अन्तरिक्षयात्री अपना यान सप्तलोकों के परे चलाकर शाश्वत आनन्दमय जीवन के प्रक्षेत्र में प्रवेश करा पाते हैं। *भगवद्गीता* में भी इसकी पुष्टि हुई है (*परस्तस्मात्तु भावोऽन्यः*) कि इस लोक से आगे वैकुण्ठ शुरू हो जाता है, जहाँ हर वस्तु स्थायी और आनन्दमय है। ये लोक विष्णुलोक या वैकुण्ठलोक कहलाते हैं। वहीं ज्ञान का आनन्दमय जीवन प्राप्त हो सकता है। वैकुण्ठलोक के नीचे भौतिक ब्रह्माण्ड है, जहाँ ब्रह्मा तथा अन्य ब्रह्मलोक के वासी प्रलय होने तक वास करते हैं, किन्तु यह जीवन स्थायी नहीं है। *भगवद्गीता* में भी इसकी पुष्टि मिलती है (*आब्रह्म भुवनाल्लोकाः*)। भले ही कोई उच्चतम लोक चला जाये, किन्तु शाश्वत जीवन प्राप्त नहीं होगा। केवल वैकुण्ठलोक पहुँच कर शाश्वत एवं आनन्दमय जीवन जिया जा सकता है।

यद्भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो

लोकास्त्रयो ह्यनु विभ्राजन्त एते ।

यन्नाव्रजन्तुषु येऽननुग्रहा

व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो लोक; भ्राजमानम्—आलोकित; स्व-रुचा—अपने तेज से; एव—केवल; सर्वतः—सब जगह; लोकाः—लोक; त्रयः—तीन; हि—निश्चय ही; अनु—तत्पश्चात्; विभ्राजन्ते—प्रकाश करते हैं; एते—ये; यत्—जो लोक; न—नहीं; अव्रजन्—पहुँच गये हैं; जन्तुषु—जीवात्माओं को; ये—जो; अननुग्रहाः—रुष्ट; व्रजन्ति—पहुँचते हैं; भद्राणि—शुभ कार्य; चरन्ति—प्रवृत्त होते हैं; ये—जो; अनिशम्—निरन्तर।

जो लोग दूसरे जीवों पर दयालु नहीं होते, वे स्वतेजोमय इन वैकुण्ठलोकों में नहीं पहुँच

पाते, जिनके प्रकाश से इस भौतिक ब्रह्माण्ड के सभी लोक प्रकाशित हैं। जो व्यक्ति निरन्तर अन्य प्राणियों के कल्याणकारी कार्यों में लगे रहते हैं, केवल वे ही वैकुण्ठलोक पहुँच पाते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर वैकुण्ठलोकों के दो पक्षों का वर्णन हुआ है। पहला तो यह है कि वैकुण्ठलोक को सूर्य तथा चन्द्रमा की आवश्यकता नहीं है। इसकी पुष्टि *उपनिषदों* तथा *भगवद्गीता* से होती है (*न तद् भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः*)। वैकुण्ठलोक स्वयंप्रकाशित हैं, अतः सूर्य, चन्द्रमा या विद्युत् बल्बों की वहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। तथ्य तो यह है कि वैकुण्ठलोकों का प्रकाश ही आकाश में प्रतिबिम्बित होता है। इसी के प्रकाश से भौतिक ब्रह्माण्ड के सूर्य प्रकाशित होते हैं और सूर्य के प्रकाशित होने पर समस्त तारे तथा चन्द्र भी प्रकाशित होते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि भौतिक व्योम के सभी नक्षत्रगण वैकुण्ठलोक से प्रकाश प्राप्त करते हैं। यदि लोग अन्य जीवों के लगातार लिए कल्याणकारी कार्य करते हैं, तो इस भौतिक लोक से वे वैकुण्ठलोक को जाते हैं। ऐसे कल्याणकारी कार्य कृष्णचेतना में ही किये जा सकते हैं। इस भौतिक जगत में कृष्णभावनामृत के अतिरिक्त कोई भी ऐसा परोपकार नहीं है, जिसमें कोई चौबीसों घण्टे लगा रह सके।

कृष्णभावनाभावित व्यक्ति सदैव यह सोचने में लगा रहता है कि दुखी मानवजाति को किस प्रकार भगवान् के धाम ले जाया जाये। यदि उसे समस्त पतित जीवों को उबारने में सफलता नहीं मिलती तो भी कृष्णचेतनामय होने के कारण उसके लिए वैकुण्ठ का द्वार खुला रहता है। वह स्वयं वैकुण्ठलोक में प्रविष्ट होने का पात्र तो रहता ही है, यदि कोई उसका अनुसरण करता है, तो वह भी वैकुण्ठलोक को जाता है। अन्य लोग, जो ईर्ष्या-व्यापार में लगे रहते हैं, कर्मी कहलाते हैं। वे परस्पर ईर्ष्या करते हैं। वे अपनी इन्द्रियतुष्टि के लिए हजारों निर्दोष प्राणियों का वध कर सकते हैं। ज्ञानी लोग कर्मियों के समान पापी नहीं होते, किन्तु वे अन्यो को भगवान् के धाम ले जाने का यत्न नहीं करते। वे अपनी ही मुक्ति के लिए तपस्या करते हैं। योगी भी आत्मोन्नति के लिए योगशक्ति प्राप्त करने के प्रयास में लगे रहते हैं। किन्तु भक्त अर्थात् वैष्णव, जो भगवान् के दास हैं, वे पतितात्माओं के उद्धार के लिए कृष्णचेतना के कार्यक्षेत्र में आगे बढ़कर कार्य करते हैं। केवल कृष्णचेतनायुक्त व्यक्ति ही वैकुण्ठलोक में जाने के योग्य होते हैं। इस श्लोक में इसका स्पष्ट रूप से वर्णन हुआ है और *भगवद्गीता* में भी इसकी पुष्टि हुई

है, जहाँ भगवान् कहते हैं कि जो व्यक्ति *भगवद्गीता* का संदेश विश्व भर में प्रचारित करता है, उसके समान उन्हें कोई अन्य प्रिय नहीं है।

शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः ।

यान्त्यञ्जसाच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

शान्ताः—शान्त; सम-दृशः—समदर्शी; शुद्धाः—पवित्र; सर्व—समस्त; भूत—जीवात्माएँ; अनुरञ्जनाः—प्रसन्न करनेवाले; यान्ति—जाते हैं; अञ्जसा—सरलतापूर्वक; अच्युत—भगवान् के; पदम्—धाम को; अच्युत-प्रिय—भगवान् के भक्त; बान्धवाः—मित्र।

जो शान्त, समदर्शी तथा पवित्र हैं तथा जो अन्य सभी जीवात्माओं को प्रसन्न करने की कला जानते हैं, वे भगवान् के भक्तों से ही मित्रता रखते हैं। केवल वे ही वापस घर को अर्थात् भगवान् के धाम को सरलता से जाने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक के वर्णन से पूरा-पूरा संकेत मिलता है कि भगवान् के भक्त ही वैकुण्ठलोक में प्रवेश कर सकते हैं। पहली बात यह कही गई है कि भक्त शान्त होते हैं क्योंकि अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए उनकी कोई माँग नहीं होती। वे तो भगवान् की सेवा में समर्पित रहते हैं। कर्मी कभी भी शान्त नहीं रह सकते क्योंकि इन्द्रियतृप्ति के लिए उनकी बड़ी-बड़ी माँगें होती हैं। ज्ञानी भी शान्त नहीं हो सकते क्योंकि मुक्ति प्राप्त करने अथवा परब्रह्म से तदाकार होने के प्रयासों में वे अत्यधिक व्यस्त रहते हैं। इसी प्रकार से योगी योगशक्ति प्राप्त करने के लिए अशान्त बने रहते हैं। किन्तु भक्त शान्त रहता है, क्योंकि वह भगवान् पर पूर्णतः समर्पित होता है और अपने को नितान्त असहाय समझता है। जिस प्रकार शिशु अपने माता-पिता पर आश्रित रहकर परम शान्ति पाता है, उसी प्रकार भक्त भी भगवान् की कृपा पर आश्रित रहने के कारण पूरी तरह से शान्त रहता है।

भक्त समदर्शी होता है। वह सबों को एक ही दिव्य पद पर देखता है। वह जानता है कि यद्यपि अपने पूर्वकर्मों के अनुसार ही बद्धजीव विशेष शरीर धारण करता है, किन्तु वस्तुतः हर जीव परमेश्वर का अंश होता है। भक्त सभी जीवात्माओं को आत्म-दृष्टि से देखता है और देहात्म बुद्धि-स्तर पर जीव-जीव में भेद नहीं मानता। ऐसे गुण भक्तों की संगति से ही उत्पन्न होते हैं। भक्तों की संगति के बिना मनुष्य कृष्णचेतना में प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए हमने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

स्थापित किया है। वास्तव में जो भी इस संघ में रहता है उसमें स्वतः कृष्णचेतना उत्पन्न हो जाती है। भक्त भगवान् को प्रिय होते हैं और भगवान् भक्त को। केवल इस स्तर पर मनुष्य कृष्णचेतना में प्रगति कर सकता है। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति पुरुष अथवा भगवान् के भक्त ही हर किसी को प्रसन्न रख सकते हैं, जैसाकि कृष्णभावनामृत आन्दोलन से परिलक्षित होता है। हम बिना भेद के सबको आमंत्रित करते हैं; हम सबसे बैठने और हरे कृष्ण मंत्र का जप करने को कहते हैं और हम जितना भी प्रसाद दे सकते हैं, लेने को कहते हैं। इस प्रकार सभी हमसे प्रसन्न रहते हैं। यही विशेषता है। *सर्वभूतानुरञ्जनाः।* जहाँ तक शुद्धता का प्रश्न है भक्तों से अधिक शुद्ध कोई हो नहीं सकता। जो भी विष्णु का नाम एक बार भी लेता है, तुरन्त भीतर-बाहर से शुद्ध हो जाता है (*यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षम्*)। चूँकि भक्त निरन्तर हरे कृष्ण मंत्र जपता रहता है, अतः भौतिक-जगत के कल्मष उसके पास नहीं फटकते। इस प्रकार वह वास्तव में शुद्ध हो जाता है। *मुचि हय शुचि हय यदि कृष्ण भजे।* कहा जाता है कि यदि चमार अथवा चभार कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी कृष्णभक्ति करे तो ब्राह्मणपद (*शुचि*) प्राप्त कर सकता है। ऐसा व्यक्ति, जो शुद्ध कृष्णभक्त है और हरे कृष्ण मंत्र का जप करता है, सारे विश्व में सर्वाधिक शुद्ध होता है।

इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ।

अभूत्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उत्तानपदः—महाराज उत्तानपाद का; पुत्रः—पुत्र; ध्रुवः—ध्रुव महाराज; कृष्ण-परायणः—पूर्णतया कृष्णभावनाभावित; अभूत्—हुआ; त्रयाणाम्—तीनों; लोकानाम्—लोकों का; चूडा-मणिः—शीशफूल, श्रेष्ठ; इव—समान; अमलः—शुद्ध, पवित्र।

इस प्रकार महाराज उत्तानपाद के अति सम्माननीय पुत्र, पूरी तरह से कृष्णभावनाभावित ध्रुव महाराज ने तीनों लोकों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया।

तात्पर्य : संस्कृत भाषा का *कृष्णपरायण* शब्द कृष्णभावनामृत या कृष्णचेतना का सही द्योतक है। *परायण* का अर्थ है “अग्रसर होना।” जो भी कृष्ण के लक्ष्य की ओर आगे बढ़ रहा हो वह *कृष्णपरायण* या *कृष्णचेतनामय* कहलाता है। ध्रुव महाराज के उदाहरण से सूचित होता है कि प्रत्येक कृष्णभक्त तीनों लोकों के शीर्ष पर पहुँचने की आशा कर सकता है। कृष्णभक्त किसी भी महत्त्वाकांक्षी

भौतिकतावादी की कल्पना से परे उच्च स्थान ग्रहण कर सकता है ।

गम्भीरवेगोऽनिमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम् ।

यस्मिन्भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

गम्भीर-वेगः—अत्यधिक वेग से; अनिमिषम्—निरन्तर; ज्योतिषाम्—नक्षत्रों का; चक्रम्—गोलक; आहितम्—जड़ा हुआ; यस्मिन्—जिसके चारों ओर; भ्रमति—घूमता है, चक्कर लगाता है; कौरव्य—हे विदुर; मेढ्याम्—मध्यवर्ती स्तम्भ; इव—सदृश; गवाम्—बैलों का; गणः—समूह ।

सन्त मैत्रेय ने आगे कहा : हे कौरव वंशी विदुर, जिस प्रकार बैल अपनी दाईं ओर बाँधे मध्यवर्ती लट्टे के चारों ओर चक्कर लगाते हैं, उसी प्रकार आकाश के सभी नक्षत्र अत्यन्त वेग से ध्रुव महाराज के धाम का निरन्तर चक्कर लगाते रहते हैं ।

तात्पर्य : इस ब्रह्माण्ड का प्रत्येक ग्रह अत्यन्त वेग से यात्रा करता है । श्रीमद्भागवत के कथन से पता चलता है कि सूर्य भी सोलह हजार मील प्रति सेकंड की गति से यात्रा करता है और ब्रह्म-संहिता के इस श्लोक—*यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणाम्*—में सूर्य को भगवान् गोविन्द का नेत्र माना गया है । इसकी भी एक कक्षा होती है, जिसके भीतर यह चक्कर लगाता रहता है । इसी प्रकार अन्य समस्त ग्रहों की अपनी-अपनी कक्षाएँ हैं । किन्तु वे सभी मिलकर ध्रुवतारा या ध्रुवलोक की प्रदक्षिणा करते हैं, जहाँ पर तीनों लोकों के शीर्ष पर ध्रुव महाराज स्थित हैं । हम केवल अनुमान लगा सकते हैं कि भक्त का वास्तविक स्थान कितना ऊँचा होता है, अतः हम भगवान् के पद की श्रेष्ठता का अनुमान लगा ही नहीं सकते ।

महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः ।

आतोद्यं वितुदञ्जलोकान्सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

महिमानम्—यश; विलोक्य—देखकर; अस्य—ध्रुव महाराज का; नारदः—नारद मुनि; भगवान्—भगवान् के ही समान पूज्य; ऋषिः—सन्त; आतोद्यम्—वीणा; वितुदन्—बजाते हुए; श्लोकान्—श्लोक; सत्रे—यज्ञस्थल में; अगायत्—उच्चारण किया; प्रचेतसाम्—प्रचेताओं के ।

ध्रुव महाराज की महिमा को देख कर, नारद मुनि अपनी वीणा बजाते प्रचेताओं के यज्ञस्थल पर गये और प्रसन्नतापूर्वक निम्नलिखित तीन श्लोकों का उच्चारण किया ।

तात्पर्य : नारद मुनि ध्रुव महाराज के गुरु थे। वे ध्रुव की महिमा देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे। जिस प्रकार पिता अपने पुत्र की हर प्रकार से उन्नति देखकर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार गुरु अपने शिष्यकी उन्नति को देख कर अतीव प्रसन्न होता है।

नारद उवाच
 नूनं सुनीतेः पतिदेवताया-
 स्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ।
 दृष्ट्वाभ्युपायानपि वेदवादिनो
 नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

नारदः उवाच—नारद ने कहा; नूनम्—निश्चय ही; सुनीतेः—सुनीति का; पति-देवतायाः—पति-परायणा, अत्यन्त पतिव्रता;
 तपः-प्रभावस्य—तप के प्रभाव से; सुतस्य—पुत्र का; ताम्—उस; गतिम्—स्थिति को; दृष्ट्वा—देखकर; अभ्युपायान्—साधन;
 अपि—यद्यपि; वेद-वादिनः—वैदिक नियमों के पालक या तथाकथित वेदान्ति; न—कभी नहीं; एव—निश्चय ही;
 अधिगन्तुम्—प्राप्त करने के लिए; प्रभवन्ति—पात्र हैं; किम्—क्या कहा जाये; नृपाः—सामान्य राजाओं की।

महर्षि नारद ने आगे कहा : अपनी आत्मिक उन्नति तथा सशक्त तपस्या के प्रभाव से ही पतिपरायणा सुनीति के पुत्र ध्रुव महाराज ने ऐसा उच्च पद प्राप्त किया है, जो तथाकथित वेदान्तियों के लिए भी प्राप्त करना सम्भव नहीं, सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या कही जाये।

तात्पर्य : इस श्लोक में वेद-वादिनः शब्द महत्त्व का है। सामान्यतः जो व्यक्ति वेदों का दृढ़ता से पालन करता है, वह वेदवादी कहलाता है। इनके साथ ही, तथाकथित वेदान्ति भी हैं, जो अपने आप को वेदान्त दर्शन का अनुयायी घोषित करते रहते हैं, किन्तु वे वेदान्त की गलत व्याख्या करते हैं। भगवद्गीता में भी वेद-वाद-रताः शब्द आया है, जो ऐसे व्यक्तियों का सूचक है, जो वेदों का सार समझे बिना वेदों में आसक्त रहते हैं। ऐसे लोग वेदों के सम्बन्ध में बातें करते रहें या अपने ढंग से तपस्याएँ करते रहें, किन्तु वे ध्रुव महाराज जैसे उच्च पद को प्राप्त नहीं कर पाते। जहाँ तक सामान्य राजाओं का सम्बन्ध है, यह बिल्कुल सम्भव भी नहीं है। यहाँ पर राजाओं का विशेष रूप से उल्लेख है क्योंकि पहले समय में राजा भी राजर्षि हुआ करते थे। ध्रुव महाराज राजा थे और साथ ही वे ऋषि के समान ज्ञानी भी थे। किन्तु भक्ति के बिना न तो महान् क्षत्रिय राजा, न ही वेदवादी ब्राह्मण ध्रुव महाराज जैसे उच्च पद को प्राप्त कर सकता है।

यः पञ्चवर्षो गुरुदारवाक्शरै-
 भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ।
 वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं
 जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; पञ्च-वर्षः—पाँच वर्ष की अवस्था में; गुरु-दार—अपने पिता की पत्नी के; वाक्-शरैः—कटु वचनों से; भिन्नेन—मर्माहत, अत्यधिक दुखित होकर; यातः—चला गया; हृदयेन—क्योंकि उसका हृदय; दूयता—अत्यधिक पीड़ित; वनम्—जंगल; मत्-आदेश—मेरे आदेश के अनुसार; करः—कार्य करते हुए; अजितम्—न जीता जा सकने योग्य; प्रभुम्—भगवान् को; जिगाय—परास्त कर दिया; तत्—उसके; भक्त—भक्तों के; गुणैः—गुणों से; पराजितम्—जीता हुआ।

महर्षि नारद ने आगे कहा : देखो न, किस प्रकार ध्रुव महाराज अपनी विमाता के कटु वचनों से मर्माहत होकर केवल पाँच वर्ष की अवस्था में जंगल चले गये और उन्होंने मेरे निर्देशन में तपस्या की। यद्यपि भगवान् अजेय हैं, किन्तु ध्रुव महाराज ने भगवद्भक्तों के विशिष्ट गुणों से समन्वित होकर उन्हें परास्त कर दिया।

तात्पर्य : परमेश्वर अजेय हैं, उन्हें कोई भी जीत नहीं सकता। किन्तु वे स्वेच्छा से अपने भक्तों की भक्ति के गुणों की अधीनता स्वीकार करते हैं। उदाहरणार्थ, भगवान् कृष्ण ने अपनी माता यशोदा के नियंत्रण की अधीनता स्वीकार की क्योंकि वे एक महान् भक्त थीं। भगवान् को अपने भक्तों की अधीनता प्रिय लगती है। *चैतन्यचरितामृत* में उल्लेख है कि प्रत्येक व्यक्ति भगवान् के समक्ष आकर स्तुति करता है, किन्तु भगवान् उससे उतने प्रसन्न नहीं होते जितना कि वे अपने को अधीन समझकर अपने भक्तों की प्रेममयी डांट से प्रसन्न होते हैं। भगवान् अपनी उच्चस्थ स्थिति को भूल कर अपने शुद्ध भक्त के समक्ष स्वेच्छा से समर्पण कर देते हैं। ध्रुव महाराज भगवान् को इसीलिए जीत पाये क्योंकि जब वे पाँच वर्ष के थे तभी उन्होंने भक्ति करने के लिए कठोर तपस्या की थी। यह भक्ति निस्सन्देह, नारद मुनि के निर्देशन में सम्पन्न हुई थी। भक्ति का प्रथम नियम है—*आदौ गुर्वाश्रयम्*—प्रारम्भ में प्रामाणिक गुरु स्वीकार करना होता है और यदि भक्त गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन करता है, जिस प्रकार ध्रुव महाराज ने नारद मुनि के आदेश का पालन किया था, तब उसे भगवत्कृपा प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

भक्ति के गुणों का सार है कृष्ण के प्रति विशुद्ध प्रेम की उत्पत्ति। इसकी प्राप्ति कृष्ण के विषय में मात्र श्रवण से की जा सकती है। भगवान् चैतन्य ने जो नियम स्वीकार किया था, वह था—यदि कोई

भी मनुष्य कृष्ण द्वारा उद्घोषित दिव्य सन्देश को अथवा कृष्ण के विषय में विनीत भाव से सुनता है, तो उसमें धीरे-धीरे अमिश्रित प्रेम उत्पन्न होता है और इसी प्रेम से वह अजेय को भी जीत सकता है। मायावादी चिन्तक परमेश्वर से तदाकार होना चाहते हैं, किन्तु एक भक्त उस स्थिति से आगे निकल जाता है। भक्त न केवल गुणों में भगवान् जैसा हो जाता है, वरन् कभी-कभी वह भगवान् का पिता, माता या स्वामी हो जाता है। अर्जुन ने भी अपनी भक्ति द्वारा भगवान् कृष्ण को अपना सारथी बनाया; उन्होंने भगवान् को आज्ञा दी कि मेरा रथ यहाँ पर रखो और भगवान् ने आज्ञा का पालन किया। ये कतिपय उदाहरण हैं, जो बताते हैं कि किस प्रकार अजेय को जीत कर भक्त द्वारा उच्च पद प्राप्त किया जाता है।

यः क्षत्रबन्धुर्भुवि तस्याधिरूढ-

मन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ।

षट्पञ्चवर्षो यदहोभिरल्पैः

प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; क्षत्र-बन्धुः—क्षत्रिय का पुत्र; भुवि—पृथ्वी पर; तस्य—ध्रुव का; अधिरूढम्—उच्च पद; अनु—पीछे; आरुरुक्षेत्—प्राप्त करने की इच्छा कर सकता है; अपि—भी; वर्ष-पूगैः—अनेक वर्षों के पश्चात्; षट्-पञ्च-वर्षः—पाँच या छह वर्ष का; यत्—जो; अहोभिः अल्पैः—कुछ दिनों बाद; प्रसाद्य—प्रसन्न करके; वैकुण्ठम्—भगवान्; अवाप—प्राप्त किया; तत्-पदम्—उस (भगवान्) का धाम।

ध्रुव महाराज ने पाँच-छह वर्ष की अवस्था में ही छह मास तक तपस्या करके उच्च पद प्राप्त कर लिया। ओह! कोई बड़े से बड़ा क्षत्रिय अनेक वर्षों की तपस्या के बाद भी ऐसा पद प्राप्त नहीं कर सकता।

तात्पर्य : ध्रुव महाराज को यहाँ पर क्षत्र-बन्धुः कहा गया है, जिसका अर्थ है कि उन्हें क्षत्रिय के रूप में पूर्ण प्रशिक्षण नहीं मिला था, क्योंकि वे केवल पाँच वर्ष के थे, वे वयस्क नहीं हो पाये थे। किसी क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण को शिक्षा ग्रहण करनी होती है। ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न बालक तुरन्त ब्राह्मण नहीं बन जाता; उसे शिक्षा तथा शुद्धि प्रक्रिया अपनानी होती है।

नारद मुनि को ध्रुव महाराज जैसे भक्त शिष्य पर गर्व था। उनके और भी अनेक शिष्य थे, किन्तु वे ध्रुव महाराज से विशेष रूप से प्रसन्न थे क्योंकि उन्होंने एक ही जीवनकाल में अपनी कठोर तपस्या से

वैकुण्ठलोक प्राप्त कर लिया, जिसे अभी तक सारे ब्रह्माण्ड में किसी अन्य राज-पुत्र या राजर्षि ने प्राप्त नहीं किया था। यहाँ महान् राजा भरत का दृष्टान्त दिया जा सकता है। वे भी महान् भक्त थे, किन्तु उन्हें तीन जन्मों में वैकुण्ठलोक प्राप्त हो सका। पहले जन्म में, यद्यपि उन्होंने जंगल जाकर तपस्या की थी, किन्तु एक मृगशावक के प्रति इतने वत्सल हो गये थे कि उन्हें अगले जन्म में मृग का शरीर धारण करना पड़ा। यद्यपि उन्हें मृग का शरीर प्राप्त था, किन्तु उन्हें अपना आत्म-पद स्मरण रहा और सिद्धि के लिए उन्हें अगले जीवन तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। तीसरे जीवन में उन्होंने जड़ भरत के रूप में जन्म लिया। उस जीवन में वे समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो सके और वैकुण्ठलोक को गये। ध्रुव महाराज के जीवन से यही शिक्षा मिलती है कि यदि कोई चाहे तो बिना बहुत से जन्मों की प्रतीक्षा के, वह एक ही जन्म में सिद्धि प्राप्त करके वैकुण्ठलोक जा सकता है। मेरे गुरु महाराज, श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद कहा करते थे कि उनका प्रत्येक शिष्य दूसरे जीवन में भक्ति करने की प्रतीक्षा किये बिना इसी जीवन में, वैकुण्ठलोक को प्राप्त कर सकेगा। उसे मात्र ध्रुव महाराज के ही समान गम्भीर तथा निष्ठावान होना पड़ेगा, तभी एक ही जन्म में वैकुण्ठलोक प्राप्त करना तथा भगवान् के धाम जाना सम्भव हो सकेगा।

मैत्रेय उवाच

एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं सम्मतं सताम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; एतत्—यह; ते—तुमसे; अभिहितम्—वर्णित; सर्वम्—सब कुछ; यत्—जो; पृष्टः अहम्—मुझसे पूछा गया; इह—यहाँ; त्वया—तुम्हारे द्वारा; ध्रुवस्य—ध्रुव महाराज का; उद्दाम—उत्कर्षकारी; यशसः—जिसकी ख्याति; चरितम्—चरित्र; सम्मतम्—स्वीकृत; सताम्—भक्तों द्वारा।

मैत्रेय ऋषि ने आगे कहा : हे विदुर, तुमने मुझसे ध्रुव महाराज की परम ख्याति तथा चरित्र के विषय में जो कुछ पूछा था वह सब मैंने विस्तार से बता दिया है। बड़े-बड़े साधु पुरुष तथा भक्त ध्रुव महाराज के विषय में सुनने की इच्छा रखते हैं।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवतम् का अर्थ है भगवान् के सम्बन्ध में हर तरह की जानकारी। चाहे हम भगवान् की लीलाओं को सुनें या उनके चरित्र, ख्याति, अथवा उनके भक्तों के कार्यकलापों को सुनें, वे

सब एक हैं। नवदीक्षित भक्त भगवान् की लीलाओं को ही समझने का प्रयास करते हैं, वे उनके भक्तों के कार्यकलापों को सुनने में उतनी रुचि नहीं दिखाते, किन्तु असली भक्तों को ऐसा भेदभाव नहीं बरतना चाहिए। कभी-कभी अल्पज्ञानी श्रीकृष्ण के रास-नृत्य के विषय में सुनना चाहते हैं, किन्तु वे *श्रीमद्भागवत* के अन्य अंशों को सुनने की परवाह नहीं करते। ऐसे अनेक वृत्ति चलाने वाले *भागवत* वाचक हैं, जो सीधे *श्रीमद्भागवत* के रासलीला खण्डों में पहुँच जाते हैं, मानो *भागवत* के अन्य अंश बेकार हों। भेदभाव बरतना और भगवान् की रासलीला का एकाएक पढ़ा जाना आचार्यों द्वारा मान्य नहीं है। निष्ठावान भक्त को *श्रीमद्भागवत* का प्रत्येक अध्याय, यहाँ तक कि प्रत्येक शब्द को बड़े ही मनोयोग से पढ़ना चाहिए क्योंकि प्रारम्भ के श्लोक बताते हैं कि यह वैदिक साहित्य का पक्वफल है। भक्तों को *भागवत* का एक शब्द भी नहीं छोड़ना चाहिए। अतः मैत्रेय मुनि ने बल दिया है कि *भागवत* परम भक्तों द्वारा सम्मत (*सम्मतं सताम्*) है।

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ।

स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

धन्यम्—धन देनेवाला; यशस्यम्—ख्याति देनेवाला; आयुष्यम्—आयु बढ़ानेवाला; पुण्यम्—पवित्र; स्वस्ति-अयनम्—कल्याण उत्पन्न करने वाला; महत्—महान; स्वर्ग्यम्—स्वर्ग प्राप्त करानेवाला; ध्रौव्यम्—या ध्रुवलोक; सौमनस्यम्—मन को भानेवाला; प्रशस्यम्—यशस्वी; अघ-मर्षणम्—समस्त पापों का नाश करनेवाला।

ध्रुव के आख्यान को सुनकर मनुष्य अपनी सम्पत्ति, यश तथा दीर्घायु की इच्छा को पूरा कर सकता है। यह इतना कल्याणकर है कि इसके श्रवणमात्र से मनुष्य स्वर्गलोक को जा सकता है, अथवा ध्रुवलोक को प्राप्त कर सकता है। देवता भी प्रसन्न होते हैं, क्योंकि यह आख्यान इतना यशस्वी है, इतना सशक्त है कि यह सारे पापकर्मों के फल का नाश करनेवाला है।

तात्पर्य : इस संसार में अनेक प्रकार के लोग हैं, इनमें सभी शुद्ध भक्त नहीं होते। कुछ कर्मी हैं, जो प्रचुर सम्पत्ति की कामना करते हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो केवल यश चाहते हैं। कुछ स्वर्गलोक को या ध्रुवलोक को जाना चाहते हैं और कुछ देवताओं को प्रसन्न करके भौतिक लाभ उठाना चाहते हैं। मैत्रेय ने यहाँ पर सबों को ध्रुव महाराज का आख्यान सुनने की संस्तुति की है, जिससे वे वांछित लक्ष्य प्राप्त कर सकें। यह संस्तुति की जाती है कि भक्तों (अकाम), कर्मियों (सर्वकाम) तथा ज्ञानियों

(मोक्ष-काम)—को भगवान् की पूजा करनी चाहिए जिससे उन्हें जीवन-लक्ष्य प्राप्त हो सके। इसी प्रकार यदि कोई भगवान् के भक्त के कार्य-कलापों के विषय में सुनता है, तो उसे भी वही फल मिलेगा। भगवान् तथा उनके शुद्ध भक्तों के कार्यों तथा आचरण में कोई अन्तर नहीं होता है।

श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाभीक्षणमच्युतप्रियचेष्टितम् ।

भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसङ्क्षयः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुन कर; एतत्—यह; श्रद्धया—श्रद्धा से; अभीक्षणम्—बारम्बार; अच्युत—भगवान् को; प्रिय—प्रिय; चेष्टितम्—कार्यकलाप; भवेत्—उत्पन्न करता है; भक्तिः—भक्ति; भगवति—भगवान् में; यया—जिससे; स्यात्—हो सके; क्लेश—कष्टों का; सङ्क्षयः—पूर्ण विनाश।

जो भी ध्रुव महाराज के आख्यान को सुनता है और श्रद्धा तथा भक्ति के साथ उनके शुद्ध चरित्र को समझने का बारम्बार प्रयास करता है, वह शुद्ध भक्तिमय धरातल प्राप्त करता है और शुद्ध भक्ति करता है। ऐसे कार्यों से मनुष्य भौतिक जीवन के तीनों तापों को नष्ट कर सकता है।

तात्पर्य : यहाँ पर अच्युत-प्रिय शब्द महत्त्वपूर्ण है। ध्रुव महाराज का चरित्र तथा यश महान् है, क्योंकि ध्रुव भगवान् अच्युत को प्रिय हैं। जिस प्रकार भगवान् की लीलाओं तथा कार्य-कलापों को सुनना सुखद लगता है उसी प्रकार परम पुरुष प्रिय उनके भक्तों के विषय में भी सुनना सुखद और सामर्थ्यशाली है। यदि कोई इस अध्याय को पढ़कर और सुन कर ध्रुव महाराज के विषय में निरन्तर पढ़े, तो उसे इच्छानुसार जीवन की परम सिद्धि प्राप्त हो सकती है और सबसे मुख्य बात तो यह है कि उसे एक महान् भक्त बनने का अवसर प्राप्त होता है। भक्त होने का अर्थ है भौतिक जीवन की समस्त दुखद अवस्थाओं का अन्त।

महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः ।

यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

महत्त्वम्—बड़प्पन; इच्छताम्—इच्छा करनेवालों को; तीर्थम्—विधि; श्रोतुः—सुननेवाले का; शील-आदयः—सच्चरित्र इत्यादि.; गुणाः—गुण; यत्र—जिसमें; तेजः—तेज; तत्—वह; इच्छूनाम्—कामना करनेवालों को; मानः—सम्मान; यत्र—जिसमें; मनस्विनाम्—विचारवान पुरुषों को।

जो कोई भी ध्रुव महाराज के इस आख्यान को सुनता है, वह उन्हीं के समान उत्तम गुणों को

प्राप्त करता है। जो कोई महानता, तेज या बड़प्पन चाहता है उन्हें प्राप्त करने की विधि यही है। जो विचारवान पुरुष सम्मान चाहते हैं, उनके लिए उचित साधन यही है।

तात्पर्य : इस संसार में सभी लोग लाभ, सम्मान तथा ख्याति की चाहत रखते हैं, सभी सर्वोच्च सम्मानित पद चाहते हैं, सभी महान् पुरुषों के गुणों के विषय में सुनना चाहते हैं। महान् पुरुषों की महत्त्वाकांक्षाएँ ध्रुव महाराज के कार्यकलापों के आख्यान को केवल सुन तथा समझ कर पूरी की जा सकती है।

प्रयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ।

सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

प्रयतः—सावधानी से; **कीर्तयेत्—**कीर्तन करे; **प्रातः—**प्रातःकाल; **समवाये—**संगति में; **द्वि-जन्मनाम्—**द्विजों की; **सायम्—**संध्या समय; **च—**भी; **पुण्य-श्लोकस्य—**पवित्र ख्याति के; **ध्रुवस्य—**ध्रुव का; **चरितम्—**चरित्र; **महत्—**महान्।

मैत्रेय मुनि ने संस्तुति की : मनुष्य को चाहिए कि प्रातः तथा सायंकाल अत्यन्त ध्यानपूर्वक ब्राह्मणों अथवा अन्य की संगति में ध्रुव महाराज के चरित्र तथा कार्य-कलापों का संकीर्तन करे।

तात्पर्य : कहा जाता है कि केवल भक्तों की संगति में ही भगवान् या उनके भक्तों के चरित्र तथा कार्यकलापों की महत्ता समझी जा सकती है। इस श्लोक में विशेष संस्तुति की गई है कि ध्रुव महाराज के चरित्र की विवेचना द्विजों अर्थात् योग्य ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों के समाज में की जाये। मनुष्य को चाहिए कि वह विशेषतः उन ब्राह्मणों का समाज खोजे, जो वैष्णव पद को प्राप्त हैं। इस प्रकार श्रीमद्भागवत की विवेचना तुरन्त ही प्रभाव डालती है, क्योंकि उसमें भक्तों तथा भगवान् के चरित्र तथा लीलाओं का वर्णन पाया जाता है। इस कार्य के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की गई है। इस संघ के प्रत्येक केन्द्र में, न केवल प्रातः, सायं या दोपहर में, अपितु चौबीस घण्टे भगवान् की लगातार भक्ति चलती रहती है। जो भी इस संघ के सम्पर्क में आता है, वह स्वयमेव भक्त बन जाता है। हमारा यह अनुभव है कि अनेक कर्मी तथा अन्य जन इस संघ में आते हैं और इस्कान के मन्दिरों में अत्यन्त शान्त तथा सुखद वातावरण पाते हैं। इस श्लोक में आए *द्विजन्मनाम्* शब्द का अर्थ है “दो बार जन्म लेनेवालों का।” कोई भी व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ में सम्मिलित हो

सकता है और द्विज होने के लिए दीक्षित हो सकता है। जैसी सनातन गोस्वामी ने संस्तुति की है, दीक्षा तथा प्रमाणित प्रशिक्षण की विधि से कोई भी मनुष्य द्विज बन सकता है। पहला जन्म तो माता-पिता देते हैं, किन्तु दूसरा जन्म आध्यात्मिक पिता तथा वैदिक ज्ञान से सम्भव होता है। जब तक मनुष्य द्वि-जन्मा नहीं होता, वह भगवान् तथा उनके भक्तों की दिव्य विशेषताओं को नहीं समझ सकता। इसलिए वेदों का अध्ययन शूद्रों के लिए वर्जित है मात्र शैक्षणिक उपाधियों से शूद्र आध्यात्मिक ज्ञान को नहीं समझ सकता। इस समय, सारे विश्व में जो शिक्षा-पद्धति है उससे शूद्र उत्पन्न हो रहे हैं। बड़े से बड़ा प्रौद्योगिकीविद् शूद्र ही होता है। कलौ शूद्रसम्भवः—कलियुग में सभी शूद्र हैं। चूँकि विश्व की पूरी जनसंख्या शूद्र है, अतः आध्यात्मिक ज्ञान का पतन हुआ है, जिससे लोग दुखी हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का सूत्रपात योग्य ब्राह्मण उत्पन्न करने के उद्देश्य से किया गया है, जो सारे विश्व में आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार कर सकें जिससे लोग सुखी रह सकें।

पौर्णमास्यां सिनीवालयां द्वादश्यां श्रवणेऽथवा ।

दिनक्षये व्यतीपाते सङ्क्रमेऽर्कदिनेऽपि वा ॥ ४९ ॥

श्रावयेच्छ्रद्धानानां तीर्थपादपदाश्रयः ।

नेच्छंस्तत्रात्मनात्मानं सन्तुष्ट इति सिध्यति ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

पौर्णमास्याम्—पूर्णमासी के दिन; सिनीवालयाम्—अमावस्या के दिन; द्वादश्याम्—एकादशी के एक दिन बाद, द्वादशी को; श्रवणे—श्रवण नक्षत्र के उदयकाल में; अथवा—या; दिन-क्षये—तिथि क्षय; व्यतीपाते—नाम का विशेष दिन; सङ्क्रमे—मास के अन्त में; अर्कदिने—रविवार को; अपि—भी; वा—अथवा; श्रावयेत्—सुनाना चाहिए; श्रद्धानानाम्—श्रद्धालु श्रोताओं को; तीर्थ-पाद—भगवान् का; पद-आश्रयः—चरणकमल की शरण में आये; न इच्छन्—न चाहते हुए; तत्र—वहाँ; आत्मना—स्व के द्वारा; आत्मानम्—मन; सन्तुष्टः—सन्तुष्ट; इति—इस प्रकार; सिध्यति—सिद्ध हो जाता है।

जिन व्यक्तियों ने भगवान् के चरण-कमलों की शरण ले रखी है उन्हें किसी प्रकार का पारिश्रमिक लिये बिना ही ध्रुव महाराज के इस आख्यान को सुनाना चाहिए। विशेष रूप से पूर्णमासी, अमावस्या, द्वादशी, श्रवण नक्षत्र के प्रकट होने पर, तिथिक्षय पर या व्यतीपात के अवसर पर, मास के अन्त में या रविवार को यह आख्यान सुनाया जाए। निस्सन्देह, इसे अनुकूल श्रोताओं के समक्ष सुनाएँ। इस प्रकार बिना किसी व्यावसायिक उद्देश्य के सुनाने पर वाचक तथा श्रोता दोनों सिद्ध हो जाते हैं।

तात्पर्य : वृत्ति करने वाले वाचक अपने पेट की अग्नि को शान्त करने के लिए धन की माँग कर सकते हैं, किन्तु वे न तो कोई आध्यात्मिक प्रगति कर सकते हैं, न ही सिद्ध हो सकते हैं। इसीलिए जीविका कमाने के लिए व्यवसाय के रूप में *श्रीमद्भागवत* को सुनाना वर्जित है। केवल ऐसा व्यक्ति, जो भगवान् के चरणारविन्द में पूर्णतः समर्पित है, अपने व्यक्तिगत या परिवार के पालन के लिए भगवान् तथा उनके भक्तों की लीलाओं के वर्णन से पूर्ण *श्रीमद्भागवत* का वाचन करके सिद्धि प्राप्त कर सकता है। संक्षेप में यह विधि इस प्रकार है—श्रोता को भागवत-सन्देश में श्रद्धा होनी चाहिए और वाचक को भगवान् पर पूर्णतः आश्रित होना चाहिए। *भागवत* के कथा वाचन को व्यवसाय नहीं बनाना चाहिए। यदि यह ठीक से किया जाये तो न केवल वाचक को पूर्ण सन्तोष होता है, वरन् भगवान् भी वाचक तथा श्रोता दोनों से परम प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार से दोनों ही श्रवण मात्र से भव-बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्यथेऽमृतम् ।
कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

ज्ञानम्—ज्ञान; अज्ञात-तत्त्वाय—सत्य से अपरिचितों को; यः—जो; दद्यात्—देता है; सत्-पथे—सत्य के मार्ग पर; अमृतम्—अमरत्व; कृपालोः—कृपालु; दीन-नाथस्य—दीनों के रक्षक; देवाः—देवतागण; तस्य—उसको; अनुगृह्णते—आशीर्वाद देते हैं।

ध्रुव महाराज का आख्यान अमरता प्राप्त करने के लिए परम ज्ञान है। जो लोग परम सत्य से अवगत नहीं हैं, उन्हें सत्य के मार्ग पर ले जाया जा सकता है। जो लोग दिव्य कृपा के कारण दीन जीवात्माओं के रक्षक बनने का उत्तरदायित्व ग्रहण करते हैं, उन्हें स्वतः ही देवताओं की कृपा तथा आशीर्वाद प्राप्त होते हैं।

तात्पर्य : *ज्ञानम् अज्ञात* का अर्थ है ऐसा ज्ञान जिससे प्रायः समस्त संसार अनजान है। कोई भी नहीं जानता कि परम सत्य क्या है। भौतिक वादियों को अपनी शिक्षा, दार्शनिक चिन्तन तथा वैज्ञानिक ज्ञान पर गर्व रहता है, किन्तु वास्तव में कोई भी नहीं जानता कि परम सत्य क्या है। अतः मैत्रेय मुनि संस्तुति करते हैं कि परम सत्य (तत्त्व) के विषय में लोगों को अवगत कराने के लिए भक्तों को विश्व भर में *श्रीमद्भागवत* की शिक्षाओं का उपदेश देना चाहिए। श्रील व्यासदेव ने वैज्ञानिक ज्ञान के इस

विशाल साहित्य का संकलन विशेषतः इसीलिए किया, क्योंकि लोग परम सत्य से सर्वथा अनजान होते हैं। *श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में, प्रथम स्कंध में कहा गया है कि विद्वान् मुनि व्यासदेव ने इस महान् *भागवत* पुराण का संकलन जनता की अविद्या को रोकने के लिए किया। चूँकि लोग परम सत्य को नहीं जानते इसलिए नारद के आदेश से व्यासदेव ने इस *श्रीमद्भागवत* का संकलन किया। सामान्यतः लोग सत्य को जानना चाहते हैं, किन्तु वे चिन्तन द्वारा, बहुत हो सका तो निर्गुण ब्रह्म की संकल्पना तक पहुँच पाते हैं। किन्तु केवल थोड़े ही लोग भगवान् को वास्तव में जानते हैं।

श्रीमद्भागवत के वाचन का उद्देश्य लोगों को परम सत्य भगवान् के विषय में ज्ञान देना है। यद्यपि निर्गुण ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा परम पुरुष में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है, किन्तु जब तक परम पुरुष से संगति के स्तर पर न पहुँचा जाये, तब तक वास्तविक अमरता प्राप्त नहीं की जा सकती। भक्तियोग जो मनुष्य को परम पुरुष की संगति तक ले जाता है, वास्तव में अमरता है। शुद्ध भक्त पतित आत्माओं पर दयालु अथवा कृपालु होने के कारण सामान्य जनों पर दया करते हैं, और वे भागवत ज्ञान को सारे संसार में बाँटते फिरते हैं। दयालु भक्त को *दीन-नाथ* अर्थात् दीन एवं मूर्ख जनता का रक्षक कहते हैं। भगवान् कृष्ण भी दीननाथ या दीनबन्धु कहलाते हैं और उनके शुद्ध भक्त भी वही दीननाथ का पद ग्रहण करते हैं। जो दीननाथ अथवा श्रीकृष्ण के भक्त भक्तिमार्ग का उपदेश देते हैं, वे देवताओं के कृपापात्र बन जाते हैं। सामान्यतः लोग देवताओं की, विशेष रूप से शिव की, पूजा करने में रुचि रखते हैं जिससे उन्हें भौतिक लाभ हो सके, किन्तु शुद्ध भक्त को जो *श्रीमद्भागवत* में संस्तुत भक्ति के सिद्धान्तों का उपदेश देते रहते हैं, देवताओं को अलग से पूजने की आवश्यकता नहीं रह जाती। देवता स्वतः उनसे प्रसन्न होकर अपने सामर्थ्य के साथ समस्त आशीर्वाद देते हैं। जिस प्रकार पेड़ की जड़ सींचने से वृक्ष की पत्तियाँ तथा डालें स्वतः सिंच जाती हैं, उसी प्रकार भगवान् की शुद्ध भक्ति करने पर भगवान् की टहनियाँ तथा पत्तियाँ, जिन्हें देवता कहा जाता है, स्वतः भक्त से प्रसन्न हो जाते हैं और वे समस्त आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

इदं मया तेऽभिहितं कुरुद्वह

ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ।

हित्वाभकः क्रीडनकानि मातु-

गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

इदम्—यह; मया—मेरे द्वारा; ते—तुमको; अभिहितम्—वर्णित; कुरु-उद्धह—हे कुरुओं सर्वश्रेष्ठ; ध्रुवस्य—ध्रुव का; विख्यात—अत्यन्त प्रसिद्ध; विशुद्ध—अत्यन्त शुद्ध; कर्मणः—जिसके कर्म; हित्वा—त्यागकर; अभकः—बालक; क्रीडनकानि—खिलौने तथा खेलने की अन्य वस्तुएँ; मातुः—अपनी माता का; गृहम्—घर; च—भी; विष्णुम्—विष्णु की; शरणम्—शरण; यः—जो; जगाम—चला गया।

ध्रुव महाराज के दिव्य कार्य सारे संसार में विख्यात हैं और वे अत्यन्त शुद्ध हैं। बचपन में ध्रुव महाराज ने सभी खिलौने तथा खेल की वस्तुओं का तिरस्कार किया, अपनी माता का संरक्षण त्यागा और भगवान् विष्णु की शरण ग्रहण की। अतः हे विदुर, मैं इस आख्यान को समाप्त करता हूँ, क्योंकि तुमसे इसके बारे में विस्तार से कह चुका हूँ।

तात्पर्य : चाणक्य पंडित ने कहा है कि यह जीवन हर एक के लिए लघु है, किन्तु यदि कोई ढंग से कार्य करे तो उसका यश पीढ़ियों तक चलता है। जिस प्रकार भगवान् कृष्ण सदैव विख्यात हैं, उसी प्रकार उनके भक्त की ख्याति भी सदैव बनी रहती है। अतः ध्रुव महाराज के कार्यकलापों का वर्णन करते हुए दो विशिष्ट शब्दों का व्यवहार हुआ है—*विख्यात* तथा *विशुद्ध*। ध्रुव महाराज द्वारा कम उम्र में गृहत्याग करना और जंगल में भगवान् की शरण ग्रहण करना—ये इस संसार के अद्वितीय उदाहरण हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध के अन्तर्गत “ध्रुव महाराज का भगवान् के पास जाना” नामक बारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।